॥ भामिनीविलास ॥

पं० अक्षयवट मिश्र।

॥ श्रीः ॥

विप्रचन्द्रविकाश ।

(तृतीय मयूख)

भामिनीविलास प्रतिबिम्ब ।

अर्थात्

श्रीपण्डितराज जगन्नाथ विरचित

भामिनीविलासका

हिन्दी पद्यानुवाद ।

श्रीभोजपुराधीश्वर महाराजाश्रित-राजधानी "डुमरांव"
निवासी श्रीयुत पण्डित राजेश्वरमिश्रजीके ज्येष्ठ
पुत्र तथा श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय
कलकत्ताके हेड पण्डित अक्षयवटमिश्र
"कवि विप्रचन्द्र" विरचित ।

कलकत्ता ।

८७ चोरबगान भारतमित्र प्रेससे
पण्डित कृष्णानन्द शर्म्मा द्वारा मुद्रित और
प्रकाशित ।

सन् १९०३ ई० ।

भूमिका।

श्रीसच्चिदानन्द जगजदीश्वर विरचित विशाल संसार महासागर के अगाध हृदयमें, असंख्य महामहिमाशाली महानुभाव धीर गम्भीर मानव, प्रवल कराल काल उत्ताल तरङ्ग मालासे तरङ्गित होकर विलीन होगये जिनका नाम भी अब किसी के कर्ण कुहरमें प्रतिध्वनित नहीं होता।

प्रातःस्मरणीय परम पूज्य कविकुल हृदयारविन्द मकरन्द सुगन्धित चरण युगल श्रीमहर्षि वाल्मीकि व्यास कालिदास जयदेव वाण सुवन्धु दण्डी श्रीहर्ष माघ भवभूति भारवि जगन्नाथ इत्यादि महाशयोंके जो परम पवित्र नाम आज तक सबके श्रवण गोचर होरहे हैं सो सर्वशक्तिशालिनी श्रीमती सरस्वतीजीके चरण सरोज सेवाकी अवर्णनीय महिमाका फल है।

श्रीवाल्मीकि, रामायणको, व्यास अष्टादश पुराणोंको, कालिदास अभिज्ञानशाकुन्तल विक्रमोर्वशी मालविकाग्निमित्र रघुवंश कुमारसम्भव मेघदूत इत्यादिको, जयदेव गीतगोविन्दको, वाण कादम्बरी हर्षचरित पार्वतीपरिणयको, सुवन्धु वासवदत्ताको, दण्डी दशकुमारचरितको, श्रीहर्ष नैषधचरित रत्नावली प्रियदर्शिकाको, माघ शिशुपालवधको, भवभूति उत्तररामचरित महावीरचरित मालतीमाधवको, जगन्नाथ रसगङ्गाधर भामिनीविलास गङ्गालहरी को, अचल स्मारक चिन्ह बना कर केवल आपही जगत्प्रसिद्ध नहीं हुए वरन श्रीराम श्रीकृष्ण युधिष्ठिर दुष्यन्त नल विक्रमभोज इत्यादि महानुभावोंको भी सर्वदाके लिये समस्त भूमण्डलमें पूर्ण रूपसे विख्यात कर गये।

इन्हीं सत्कवियोंमें दिल्लीश्वरसभासम्मानित पण्डितराज जगन्नाथ अन्तिम कविथे। इनके बाद ऐसा विलक्षण उद्दण्ड कवि कोइ न हुआ।

"कवयति पण्डितराजे कवयन्त्यन्येऽपि विद्वांसः ।
नृत्यतिपिनाकपाणौ नृत्यन्त्यन्येऽपि भूतवेतालः
माधुर्यैरपि धुर्यैं द्राक्षाक्षीरेक्षुमाक्षिकादीनाम् ।
वन्ध्यैव माधुरीयं पण्डितराजस्य कवितायाः ॥ १ ॥"

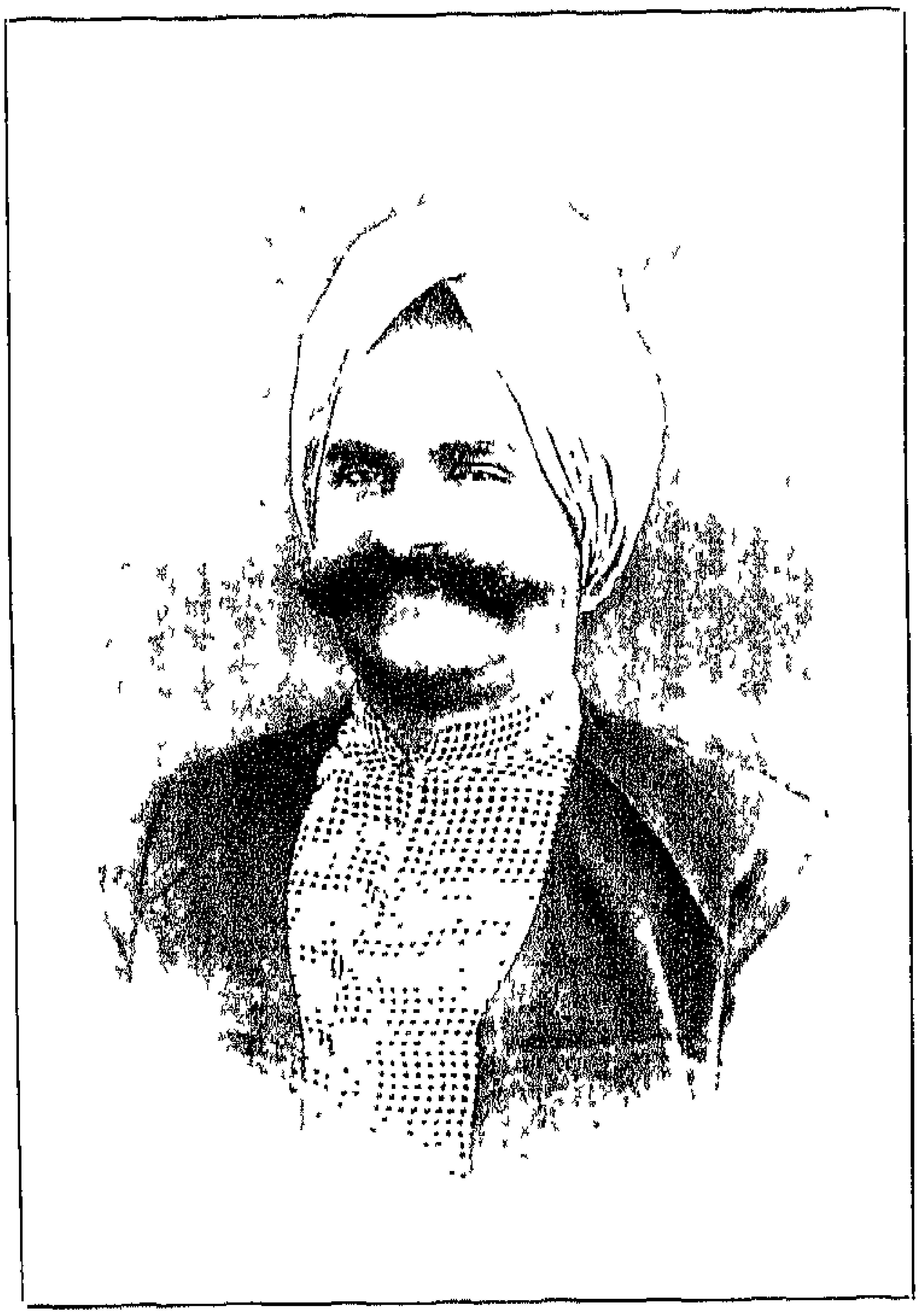
इनकी काव्यमें शब्दमाधुर्य पदलालित्य भावगाम्भीर्य सरस यमक अनुप्रास ऐसे उत्तम होते हैं कि श्रावण मात्रहीसे साधारण विद्वान का भी हृदय आनन्दोद्रेक परवश होजाता है ।

जब हमने इनके बनाये हुए भामिनीविलासको देखा तो चित्त में अनिर्वचनीय आनन्द उत्पन्न हुआ। पर दुःख यह हुआ कि हा! इसके अनुपम सुखको केवल संस्कृतहीके कवि लूटतेहैं। बिचारे हिन्दी भाषाके रसिक कवि इस सुखसे सर्वदा वञ्चित होरहे हैं ।

इस कारण यह अत्युत्तम ग्रन्थ हिन्दीके अनेक प्रसिद्ध छन्दोंमें अनुवाद किया और नाम भी "भामिनीविलास प्रतिबिम्ब" रखा । हम अत्यन्त लज्जित हैं कि जो संस्कृतके पद्यमें शब्दमाधुर्य यमक अनुप्रासादि गुण हैं सो इस अनुवादमें नहीं आये यथार्थ अनुवाद में यह कष्ट आही जाता है। हम डरते थे कि अनुवादमें किसी पद का अर्थ न छूट जाय। अर्थ तो ठीक ठीक आगया किन्तु पदोंमें कठि नता आगई इस दोषको दूर करनेके लिये टिप्पणी कर दी है।

आशा है कि पाठक महोदयगण इस अल्पज्ञ बालककी इस लघु-ग्रन्थको प्यारकी दृष्टिसे देखेंगे ।

विनयावनत विप्रचन्द्र ।



Pandeya Umapati Datta Sharma

1908.

समर्पण ।

श्रीमन्मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र चरणकमल चञ्चरीक निरवद्य गद्य पद्य रचनाचण चातुरीक चतुर कविजन मञ्जु मानस मराल मानस-भद्र भाव भूति भूषित भव्यभानु दयोदारता द्यनेक गुण मण्डल भूमण्डल मण्डनाय-मान विशदविद्या विशाल विलास व्यतीत वहुवासर विभावरीक निष्कलङ्क सकल कला कलाप कुशल कलकत्ता स्थित श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय--प्रधानाध्यक्ष (प्रिन्सपल) पाण्डेय श्रीमदुमापतिदत्त शर्म्मणे नमोनमः ।

मदीयकल्पतरुकल्प !

जब कि आपने अपने पाणि पल्लव की छायामें मुझे आश्रय दिया तो मेरी वस्तुको भी अवश्य आश्रय देंगे। इसी भरोसे यह पुस्तक आपकी सेवामें सादर समर्पित है अङ्गीकार कीजिये ।

विजया दशमी
विक्रमाब्द १९९० }

विनीत—
विप्रचन्द्र ।

दोहा ।

श्रीराधाधव माधव श्रीसीताधव धीर ।
त्वां नमामि शिरसा सदा धृतमत्स्यादि शरीर ॥ १ ॥
कुण्डल मण्डित श्रवण युग पीत बसन जगदीश ।
वासं कुरु सह राधया मम हृदये गोपीश ॥ २ ॥
नन्दतनय तव सन्निधौ प्रार्थयामि हृदयेन ।
श्रवणे कुरु मम निर्मले वेणोस्वरं दु निनदेन ॥ ३ ॥
श्रीराधे कृष्णप्रिये श्रीवृषभानुसुतेहि ।
मह्य मचलभक्तिं परां निज पद कमले देहि ॥ ४ ॥
श्रीराधाराधाधवौ भवबाधा शमनौच ।
सन्तनुतां मम मङ्गलं निखिल दुःख दमनौच ॥ ५ ॥

भामिनीविलास ।

(प्रथमविलास)

शिखरिणी ।

दिगन्ते श्रूयन्ते मदमलिनगण्डा: करटिन: ।
करिण्य: कारुण्यास्पदमसम शीला: खलु मृगा: ॥
इदानीं लोके ऽस्मिन्ननुपमशिखानां पुन रयं ।
नखानां पाण्डित्यं प्रकटयतु कस्मिन्मृगपति: ॥ १ ॥

पृथ्वी ।

पुरा सरसि मानसे विकचसारसालिस्खलत ।
परागसुरभीकृते पयसि यस्य वीतं वय: ॥
स पल्वलजले ऽधुना मिलदनेकभेकाकुले ।
मरालकुलनायक: कथय रे कथं वर्तताम् ॥ २ ॥

शार्दूल विक्रीड़ित ।

तृष्णालोल विलोचने कलयति प्राचीं चकोरीगणे ।
मौनं मुञ्चति किञ्च कैरवकुले कामे धनुर्धुन्वति ॥
माने मानवतीजनस्य सपदि प्रस्थातुकामे ऽधुना ।
धात: किन्नु विधौ विधातु मुचितो धारा धरा डम्बर: ॥ ३ ॥

मालिनी ।

अयि ! दलदरविन्द स्यन्दमानं मरन्दं ।
तव किमपि लिहन्तो मञ्जु गुञ्जन्तु भृङ्गा: ॥
दिशि दिशि निरपेक्ष स्तावकीनं विवृण्वन् ।
परिमल मय मन्यो बान्धवो गन्धवाह: ॥ ४ ॥

गीति ।

समुपागतवति दैवा दवहेलां कुटज ! मधुकरे मागा: ।
मकरन्दतुन्दिलाना मरविन्दाना मयं महामान्य: ॥ ५ ॥

सवैया।

भाजि दिगन्त गये डरिकै बर वीर गयन्द (१) मबै मतवारे।
दीन बड़ी हरणी करिणी तिनको सुविलोकि दया उर धारे॥
"विप्रसुचन्द" भली उपमा तिनकी दिखरात नहीं जगसारे।
तीखनता अपने नखकी प्रगटावै कहां मृगराज (२) विचारे॥ १॥

रोला।

जो पराग (३) जुत पद्म गन्धतें नीर सुवासित।
मान सरोवर मांह बितायो वय (४) अपनो नित॥
सो अनेक मंडूक (५) सहित पलुल (६) मंह वासर।
कहो वितावै कस मराल (७) कुलनाथ गुणाकर॥ २॥

छपै।

तृष्णा चञ्चल नैन चकोरी गण प्राची (८) दिशि।
सांझ विलोकत और मुकुद बन विकसित जिहि निशि॥
तानि धनुष अरु पञ्चवान (९) निज बान चलावत।
पिय ऽपराध करि याद नारि जो रोम (१०) जनावत॥
सोऊ छोड़त मानको देखैं चन्द्रकलानि जब।
धात! तोहि चाहिय न घनमण्डल पसरैवो सु तव॥ ३॥

रोला।

ए बिकसित अरविन्द (११) झरत मकरन्द (१२) पियत जे।
करैं मञ्जु गुञ्जार सदा तुव मीत मधुप ते॥
पै निस्पृह सो (१३) गंधवाह (१४) परिमल (१५) फैलावत।
अहै तुम्हारो बन्धु चहूं दिसि जो गुन गावत॥ ४॥

दोहा।

बड़े भाग आयो मधुप कुटज (१६) न करु अपमान।
यह विशेष मकरन्द जुत कमलनके महमान॥ ५॥

---

(१) गजेन्द्र। (२) सिंह। (३) फूलकी धूली। (४) उमर। (५) मेडक। (६) बहुत छोटा तलाव जिसका पानी गदला हो। (७) हंस। (८) पूरब। (९) काम। (१०) कोप। (११) कमल। (१२) पुष्परस। (१३) कोमल। (१४) लोभ रहित। (१५) पवन। (१६) पुष्पविशेष।

आर्या।

तावत् कोकिल! विरसान् यापय दिवसान् वनान्तरे निवसन्।
यावन् मिलदलिमालः कोपि रसालः समुल्लसति॥ ६॥

पुष्पिताग्रा।

कमलिनि मलिनीकरोषि चेतः किमिति वकै रवहेलिता ऽनभिज्ञैः।
परिणत मकरन्दमार्मिका स्ते जगति भवन्तु चिरायुषो मिलिन्दाः॥७॥

गीति।

नितरां नीचो ऽस्मीति त्वं खेदं कूप मा कदापि कृथाः।
अत्यन्तसरसहृदयो यतः परेषां गुणग्रहीता सि॥ ८॥

आर्या।

येना ऽमन्दमरन्दे दलदरविन्दे दिना न्यनायिषत।
कुटजे खलु तेने हा तेने हा! मधुकरेण कथम्॥ ९॥

उद्गीति।

अयि मलयज महिमा ऽयं कस्य गिरा मस्तु विषय स्ते।
उद्गिरतो यद्गरलं फणिनः पुष्णासि परिमलोद्गारैः॥ १०॥

गीति।

पाटीर! तव पटीयान कः परिपाटी मिमा मुरीकर्त्तुम्।
यत् पिंषता मपि नृणां पिष्टो पि तनोषिपरिमलैःपुष्टिम्॥११॥

आर्या गीति।

नीरक्षीर विवेके हंसा ल मालस्यं त्व मेव तनुषे चेत्।
विश्वस्मिन्नधुना न्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः॥ १२॥

दोहा।

बितवहु कोकिल अनत बसि नीरस दिवस विशाल।
नहिं जबलौं अलि (१) माल जुत विलसत एक रसाल॥ ६॥

चौपाई।

जो मूरख बक मान न कीना।
कमलिनि किमि चित करत मलीना॥
तुव पराग (२) के जानन वारे।
जीवैं मधुकर बरस हजारे॥ ७॥

दोहा।

हौं अति नीच विचारि यह करहु न खेद सुकूप।
पर गुन (३) ग्राही अरु सरस तेरो हृदय अनूप (४)॥ ८॥

दोहा।

बहु दिन विकसित कमल महं बितयो मधुकर जौन।
हा! अब कैसे कुटज महं परम प्रेम किय तौन॥ ९॥

दोहा।

तुव महिमा चन्दन! अहो! बरनि सकै जन कौन।
पोषत फणिन (५) सुवास लै विष बरसावत जौन॥ १०॥

दोहा।

चन्दन यह तेरो चलनि चलि को सक जग माहिं।
जऊ तोहि घरसत मनुज तऊ देत सुख ताहि॥ ११॥

दोहा।

नहिं करिहौ जब हंस तुम नीर छीर पहचान।
रखिहै कुलमरजाद तब जगमहं कौन सुजान॥ १२॥

---

(१) भौंरा। (२) फूलकी धूली। (३) गुण वा डोरी
(४) उपमा रहित। (५) सर्पोंको।

गीति।

उपरि करवालधाराकाराः क्रूरा भुजंगपुङ्गवाः।
अन्तः साक्षाद्राक्षा दीक्षागुरवो जयन्ति के पि जनाः ॥१३॥

प्रहर्षिणी।

स्वच्छन्दं दलदरविन्द ते मरन्दं विंदन्तो विदधतु गुञ्जितं मिलिन्दाः
आमोदा नथ हरिदन्तराणि नेतुं नैवान्यो जगति समीरणात्प्रवीणः १४

शार्दूलविक्रीडित।

याते मय्यचिरान्निदाघजलनज्वालाशतैः शुष्कताम्।
गन्ता कम्प्रति पान्थसन्तति रसौ सन्तापमालाकुला॥
एवं यस्य निरन्तराधिपटलैर्नित्यं वपुः क्षीयते।
धन्यंजीवन मस्य मार्गसरसो धिग् वारिधीनां जनुः॥१५॥

वसन्त तिलक।

आपेदिरे ऽम्बरपथं परितः पतङ्गाः
भृङ्गारसालमुकुलानि समाश्रयन्ते।
सङ्कोच मञ्चति सर स्त्वयि दीनदीने
मीनो नु हन्त कतमां गति मभ्यपैतु॥ १६॥

गीति।

मधुप इव मारुते ऽस्मिन् मा सौरभलोभ मम्बुजिनि मंस्थाः।
लोकाना मेव मुदे महितोपकारा ऽसुनार्थिताप्रीतः॥ १७॥

गीति।

गुञ्जति मञ्जु मिलिन्दे मा मालतिः मौन मुपयासीः।
शिरसा वदान्यगुरवः सादर मेनं वहन्ति सुरतरवः॥ १८॥

दोहा।

ऊपर धार कृपाण सम क्रूर सर्प सम जौन ॥
भीतर मधुर सुदाख सम जीवैं गुरुवर तौन ॥ १२ ॥

रोला।

ऐ ! विकसित अरविन्द ! सुछन्द पराग पान करि ।
भ्रमर करैं गुञ्जार सदा अति मोद हीय धरि ॥
पै पसारिबे हेत गन्धको बहु [illegible] ।
है समीर तैं कुशल (१) अगत-सह कोऊ नाहीं ॥ १४ ॥

रोला।

जैहैं जब हम सूखि कठिन रवि किरन ज्वाल ते ।
तब कहं जैहै पथिक (२) सङ्घ (३) यह प्यासा कुल जे ॥
अस विचार नित आधि (४) पटल सूखत वपु (५) जिनको ।
धनि तिहि सरको जन्म अहै धिक वारिधि गनको ॥ १५ ॥

रोला।

गयो गगन पथ मांझ चहूँ दिसितैं पङ्कोजन ।
पुनि रसालके सुमनमांझ किय बास भ्रमरगन ॥
ऐ सरवर ! अतिचाल ! नीर तुव गयो सूखि जब ।
जायं कहां अकुलाय हाय यह दीन मीन तब ॥ १६ ॥

दोहा।

कमलिनि लोभी मधुप सम मारुतको जिन जान ।
जीवनके (६) हित लागि यह जाचक भयो सुजान ॥ १७ ॥

दोहा।

गुञ्जत मञ्जु मलिन्द जब गहु न मालती ! मौन ।
धारत सादर सीस इहिं दानी सुरतरु जौन ॥ १८ ॥

---

(१) चतुर। (२) राही। (३) समूह। (४) मानसो व्यथा। (५) शरीर। (६) प्राणियों।

गीति।

ये त्वं गुणगणवानपि सतां द्विजिह्वै रसेव्यतां नीतः।
तानपि वहसि पटीरज! किं कथयाम स्त्वदीय मौन्नत्यम्॥१८॥

आर्या।

गाह्रित मखिलं गहनं परितो दृष्टा श्च विटपिनः सर्वे।
सहकारः न प्रपेदे मधुपेन भवत्समं जगति॥ २०॥

आर्या।

अपनीतपरिमलान्तरकथे पदं न्यस्य देवतरुकुसुमे।
पुष्पान्तरेऽपि गन्तुं वाञ्छसि चेद्भ्रमर! धन्योऽसि॥ २१॥

उपगीति।

तटिनि! चिराय विचारय विन्ध्यभुव स्तव पवित्रायाः।
शुष्यन्त्या अपि युक्तं किं खलु रथ्योदकादानम्॥ २२॥

आर्या।

पत्रपुष्पफललक्ष्मया कदा प्यदृष्टं वृतं च खलुशूकैः।
उपसर्पेम भवन्तं वर्बुर वद कस्य लोभेन॥ २३॥

आर्या।

एक स्त्वं गहनेऽस्मिन् कोकिल! न कलं कदाचि दपि कुर्याः।
साजात्यशंकयाऽमी न त्वां निघ्नन्ति निर्दयाः काकाः॥ २४॥

आर्या।

तरुकुलसुषमापहरां जनयन्तीं जगति जीवजातार्तिम्।
केन गुणेन भवानीतात! हिमानी मिमां वहसि॥ २५॥

रोला।

है यद्यपि गुणवान तऊ तजियत जेहि कारन।
सो लिपटेही रहत भुजग तुव अङ्ग मझारन॥
ऐ चन्दन! तुम ताहि रखत निज अङ्ग सदाई।
यह उदारता तोर काहु तें कही न जाई॥ १९॥

दोहा।

ढूँढ्यो मधुप अनेक वन देख्यो विटप (१) हजार।
पै नहि पायो तुव सरिस जगमहं ऐ सहकार (२)॥ २०॥

अलि! सुगन्धजुत देवतरु (३) कुसुमनपै धरि पाय।
चहत दूसरे सुमनको तौ धनि तोर सुभाय॥ २१॥

जन्म विन्ध्यतें शुद्ध तुव नदि! विचारु मन माहि।
सूखत तउ लैबो उचित जल मलीनतें नाहिं॥ २२॥

पत्र पुष्प फल हीन तुम कण्टक भरो शरीर।
हम आवैं किहि लोभसो कहु बबूल! तुव तीर॥ २३॥

कोकिल! यावन एक तुम कहहु न मञ्जुल वाक।
तोहि जानि निज सरिस ये मरिहैं निर्दय काक॥ २४॥

चौपाई।

तरु कुल सुषमा नासनवारो।
अरु सब जनको करत दुखारो॥
कौन जानि गुन गौरी ताता।
राखत हिम कहं अपने गाता॥ २५॥

---

(१) वृक्ष। (२) आम। (३) कल्पवृक्ष।

गीति।

कलभ ! तवान्तिक मागत मलि मेनं मा कदा प्यवज्ञासीः।
अपि दानसुन्दराणां द्विपधुर्याणा मयं शिरोधार्यः॥ २६॥

आर्या।

अमरतरुकुसुम सौरभ सेवन सम्पूर्ण सकलकामस्य।
पुष्पान्तरसेवे यं भ्रमरस्य विडम्बना महती॥ २७॥

आर्या।

पृष्टाः खलु परपुष्टाः परितो दृष्टा श्च विटपिनः सर्वे।
माकन्द ! न प्रपेदे मधुपेन तवो पमा जगति॥ २८॥

मन्दा क्रान्ता।

तोयै रल्पै रपि करुणया भीमभानौ निदाघे।
मालाकार व्यरचि भवता या तरो रस्य पुष्टिः॥
सा किं शक्या जनयितु मिह प्रावृषेण्येन वाराम्।
धारासारा नपि विकिरता विश्वतो वारिदेन॥ २९॥

शार्दूलविक्रीडित।

आरामाधिपति र्विवेकविकलो नूनं रसा नीरसा।
वात्याभिः परुषीकृता दशदिश श्चण्डातपो दुःसहः॥
एवं धन्वनि चंपकस्य सकले संहारहेता वपि।
त्वं सिञ्च न्नमृ तेन तोयद ! कुतो प्याविष्कृतो वेधसा॥ ३०॥

शिखरिणी।

न यत्र स्थेमानं दधु रतिभयभ्रांतनयनाः।
गलद्दानोद्रेक भ्रमदलि कदम्बाः करटिनः॥
लुठन्मुक्ताभारे भवति परलोकं गतवतो।
हरे रद्य द्वारे शिव शिव शिवानां कलकलः॥ ३१॥

दोहा।

कलभ! निकट आयी मधुप न करु कबहुं अपमान।
मद मण्डित गजराज जिहि करत अधिक सनमान ॥२६॥

मधुप देवतरु कुसुमतें सकल मनोरथ पूरि।
अपर सुमनको सेइबो यहै विडम्बन भूरि ॥ २७ ॥

पूछ्यो कोकिलसों भ्रमर देख्यो बिटप अनेक।
ऐ रसाल! नहिं जगतमें पायो तुव सम एक ॥ २८ ॥

अति प्रचण्ड कर (१) धारि उदित रवि ग्रीषममें जब।
ऐ माली! तुम सदय नेक जल दिय तरु मै तब ॥
पावसमें नित मेघ यदपि बरसै धारा सब।
तौहु नहिं करि सकत ताहिको सो समता अब ॥ २९ ॥

माली अति मतिमन्द भई पुहुमी नीरस अब।
चलत बात परचण्ड चहुं दिसि रवि तापत सब ॥
ऐसे मरुथल मांह लग्यो चम्पक जब झरसन ।
बिधितें प्रगटित मेघ तबै लाग्यो जल बरसन ॥ ३० ॥

स्रवत जासु मद धार कपोलन झुकत भ्रमर गन।
सो अतिही भय मानि रहत जहं गजगन नेक न ॥
गजमोती जिहिं हार लुढ़त तहं हाय शिवा (२) सब ।
कलकल करत महान सिंह परलोक गयो जब ॥ ३१ ॥

---

(१) किरन। (२) सियारिन।

शिखरिणी ।

दधानः प्रेमाणं तरुषु समभावेन विपुलं ।
न मालाकारो ऽस्मा वकृत करुणां बालबकुले ॥
अयन्तुद्रा गुम्यत्कुसुमनिकराणां परिमलैः ।
दिगन्ता नातेने मधुमकुलझंकारभरितान् ॥ २२ ॥

शार्दूल विक्रीड़ित ।

मूलं स्थूल मतीवबन्धनदृढं शाखाः शतं मांसलाः ।
वासो दुर्गमहीधरे तरुपते ! कुत्रा स्ति भीति स्तव ॥
एकः किन्तु मना गयं जनयति स्वान्ते ममा धिज्वरं ।
ज्वालालीवलयीभवन्न कारणो दावानलो घस्मरः ॥ २३ ॥

ग्रीष्मे भीष्मतरैः करै र्दिनकृता दग्धो पि यश्चातकः ।
त्वां ध्यायन् घन वासरान् कथ मपि द्राघीयसो नीतवान् ॥
दैवा ल्लोचनगोचरेण भवता तस्मिन्निदानीं यदि ।
स्त्रीचक्रे करकानिपातमकृपा तत् कम्प्रति ब्रूमहे ॥ २४ ॥

मालिनी ।

दवदहनजटालज्वालजालाहतानाम् ।
परिगलितलतानां म्लायतां भूरुहाणाम् ॥
अपि जलधर शैलश्रेणिशृङ्गेषु तोयम् ।
वितरसि बहु को ऽयं श्रीमद स्तावकीनः ॥ २५ ॥

वसन्त तिलका ।

शृण्वन् पुरः परुषगर्जित मस्य हन्त !
रेपान्थ विह्वलमना न मना गपि स्याः ॥
विश्वार्तिवारणसमर्पितजीवितो यं ।
ना कर्णितः किमु सखे भवता ऽम्बुवाहः ॥ २६ ॥

रोला।

माली नित सम भाव प्रेम किय सब तरु कुलमैं।
यदपि अधिक नहिं प्रीति करी इहिं बाल वकुलमैं (१) ॥
यह तौ वेगिहि प्रगट सकल कुसुमन परिमलतें।
चहुँ दिसि किय झङ्कार अलिनके मृदु कलकलतें ॥ २२ ॥

दृढ़ बन्धन दृढ़ मूल पीन शत शाखा हू सब।
दुर्ग शैलपर बास त्रास नहिं कछु तरुको अब ॥
तऊ यहै दुख देत एक, मन चैन न इक पल।
ज्वालजालमण्डलित अदय (२) लोलुप दावानल ॥२३॥

ग्रीषम भीषम (३) भानु किरण तापित हू चातक।
तुम्हें सुमिरि हे मेघ! कठिन बितयो बहु दिन सक ॥
बड़े भागतें आज नयन आगे भौ तुम जब।
कीन्हीं करका (४) पात काहि सो हाय कहूं तब ॥ २४ ॥

कठिन दवानल ज्वाल जालतें जरत जासु तन।
म्लान भये तरु सबै और खसि परे लतागन ॥
अहो मेघ! तउ शैल माझ बरसत जल धारा।
कौन सकै कहि यह विचित्र अभिमान तुम्हारा ॥ २५ ॥

दोहा।

प्रथम गरज कटु सुनि पथिक! दुखित न करु मन नेक।
सुन्यो न किमि प्रिय! जग सकल ताप हरन घन एक ॥ २६ ॥

---

(१) मौलिसरी। (२) दया रहित। (३) भयानक। (४) ओले।

शार्दूल विक्रीड़ित।

सौरभ्यं भुवनत्रये ऽपि विदितं शैत्यं नु लोकोत्तरम्।
कीर्त्तिः किञ्च दिगङ्गनाङ्गणगता किन्त्वेत देकं शृणु॥
सर्वानेव गुणा नियं निगिरति श्रीखण्ड ते सुन्दरान्।
उज्झन्ती खलु कोटरेषु गरलज्वालां विजिह्वावली॥ ३७॥

अनुष्टप।

नापेक्षा नच दाक्षिण्यं न प्रीति र्न च सङ्गतिः।
तथापि हरते तापं लोकाना मुन्नतो घनः॥ ३८॥

शिखरिणी।

समुत्पत्तिः स्वच्छे सरसि हरिहस्ते निवसतिः।
विलासः पद्मायाः सुरहृदयहारी परिमलः॥
गुणै रेतै रन्यै रपि च ललित स्याम्बुज तव।
द्विजोत्तंसे हंसे यदि रति रतीवोन्नति रियम्॥ ३९॥

शार्दूल विक्रीड़ित।

साकं ग्रावगणै र्लुठन्ति मणय स्तीरे ऽर्कबिम्बोपमाः।
नीरे नीरचरैः समं स भगवान् निद्राति नारायणः॥
एव वीक्ष्य तवा विवेक मपि च प्रौढिं परा मुन्नतेः।
किं निन्दा न्यथवा स्तवानि कथय क्षीरार्णव त्वा महम्॥ ४०

गीति।

किं खलु रत्नै रेतैः कि म्पुन रभ्रायितेन वपुषाते।
सलिल मपि य न्नतावक मर्णववदनं प्रयाति तृषितानाम्॥ ४१॥

रोला।

त्रिभुवन विदित सुगन्ध अलौकिक शीतलता अरु।
कीरति चहुँ दिसि ख्यात तऊ सुनु है चन्दनतरु॥
यह कोटर मधि भुजग श्रेणि जो विष बरसावति।
सो तुव अति रमणीय विपुल गुणगण बिनसावति॥३७॥

दोहा।

नहि आशा अनुकूलता नहीं प्रीति अरु सङ्ग।
ताप हरत तउ सबनको उन्नत मेघ सुरङ्ग॥ ३८॥

रोला।

जन्म विमल सरमाहि वास हरि (१) कर कमलन मंह।
कमलाको (२) सुविलास गन्ध मनहरन सुरन कंह॥
सकल गुणाकर ललित कमल! यह अति उन्नति तव।
द्विजशेखरमणि हंसमांह तुव विमल प्रेम जव॥ ३९॥

रविमण्डल सम रतन शिला संग लुढ़त तीरमै।
जलचारिनके सङ्ग शयन हरि करत नीरमै॥
ऐसो तुव अविवेक देखि पुनि उन्नति उत्तम।
कहहु क्षीरनिधि! काह? करै निन्दास्तुति तुवहम॥ ४०॥

दोहा।

काह? भयो बहु रतनतैं काह सुघर तुव गात।
उदधि! जलहु जो तृषितके सुखमंह नाही जात॥ ४१॥

---

(१) विष्णु। (२) लक्ष्मी।

शिखरिणी।

इयत्यां सम्पत्ता वपिच सलिलानां त्व मधुना।
न तृष्णा मार्तानां हरसि यदि कासार सहसा॥
निदाघे चण्डांशौ किरति परितो ऽङ्गारनिकरं।
कृशीभूतः केषा मह ह परिहर्त्तासि खलु ताम्॥ ४२॥

औपच्छसिकं।

अयि रोष मुरीकरोषि नो चेत् किमपि त्वां प्रति वारिधे वदामः।
जलदेन तवार्थिना विमुक्ता न्यपि तोयानि मनाङ् न हा जहासि ४३

उपजाति।

न वारयामो भवतीं विशन्तीं वर्षानदि! स्रोतसि जन्हुजायाः।
न युक्त मेत त्तु पुरो व दस्या स्तरङ्गभङ्गान्प्रकटीकरोषि॥ ४४॥

शार्दूल विक्रीडित।

पौलोमीपतिकानने विलसतां गीर्वाणभूमीरुहाम्।
येन घ्रातसमुज्झितानि कुसुमा न्याजघ्निरे निर्जरैः॥
तस्मिन्नद्य मधुव्रते विधिवशान्माध्वीक माकांक्षति।
त्वं चे दञ्चसि लोभ मम्बुज तदा किं त्वां प्रति ब्रूमहे॥४५॥

वसन्त तिलका।

भुक्तामृणालपटली भवता निपीता,
न्यम्बूनि यत्र नलिनानि निषेवितानि।
रेराजहंस! वद तस्य सरोवरस्य
कृत्येन केन भवितासि कृतोपकारः॥ ४६॥

रोला।

इतनी सम्पति आज पाइहु तुम सलिलनको (१)।
हरत न बेगिहिं तृषा सरोवर जो तृषितनको॥
ग्रीषम भीषम तपन (२) भरत चहुँदिसि अंगार जब।
हरिहो किहिको प्यास हाय तुम अतिहि सूखि तब॥ ४२॥

दोहा।

रे वारिधि! (३) हम कहत कछु यदि न कोप करु एक।
तुव जल लै बरसत जलद तुम न देत जल नेक॥ ४३॥

बरषा नदि! बरजौं न तोहि गङ्ग धारमैं जात।
उचित न तिहिं ढिग जाह्नवी बहु तरङ्ग प्रगटात॥ ४४॥

रोला।

नन्दन कानन मांझ विराजित सुरतरु गनको।
देवनके संग मधुप लियो शुभगन्ध सुमनको॥
सो तुव चहत पराग आय बड़भागन तें अब।
अहो जलज! तुम लोभ करत मैं काह कहूँ तब॥ ४५॥

दोहा।

जहं जल पिय सूँघ्यो कमल किय मृणाल आहार।
तिहिं सरको कछु हंस तुम कियो कौन उपकार॥ ४६॥

---

(१) जल। (२) सूर्य्य। (३) समुद्र।

शार्दूल विक्रीड़ित।

प्रारम्भे कुसुमाकरस्य परितो यस्यो ल्लसन्मञ्जरी।
पुञ्जेमञ्जुलगुञ्जितानि रचयं स्ता नातनो रुत्सवान्॥
तस्मिं न्नद्य रसाल शाखिनि दशां दैवात् कृशा मञ्चति।
त्वञ्चे न्मुञ्चसि चञ्चरीक विनयं नीच स्त्वदन्यो ऽस्ति कः ४७

वसन्त तिलक।

एणीगणेषु गुरुगर्वनिमीलिताक्षः
किं कृष्णसार! खलु खेलसि कानने ऽस्मिन्।
सीमा मिमां कलय भिन्नकरीन्द्रकुम्भ
मुक्तामयीं हरिविहार वसुन्धरायाः॥ ४८॥

आर्या।

जठरज्वलनज्वलता प्यपगतशङ्कं समागता पि पुरतः।
करिणा मरिणा हरिणा हरिणाली हन्यतां नु कथम्॥४९॥

रथोद्धता।

येन भिन्नकरिकुम्भविस्खलन् मौक्तिकावलिभि रञ्चितामही।
अद्य तेन हरिणान्तिके कथं कथ्यतां नु हरिणा पराक्रमः॥५०॥

शिखरिणी।

स्थितिं रे नो दध्याः क्षण मपि मदान्धेक्षण सखे।
गजश्रेणीनाथ त्व हिम जटिलायां वनभुवि॥
असौ कुम्भिभ्रांत्या खरनखरविद्रावितमहा।
गुरुग्रावग्रामः स्वपिति गिरि गर्भे हरिपतिः॥ ५१॥

मुंजुभाषिणी।

गिरिगह्वरेषु गुरुगर्वगुम्फितो। गजराजपोत! न कदापि सञ्चरेः॥
यदि बुध्यते हरिशिशु स्तनन्धयो। भविता करेणुपरिशेषिता मही॥५२॥

कवित्त।

प्रथम बसन्त जब आयो जगमाहि तब मंजरी प्रसूनको (१) चहूंधा सरसात है। तापै बैठि बार बार गुंजरत मंजु मंजु उत्सव अनेक तुम कीन्ह दिन रात है॥ कठिन अभाग बस ह्वै तैं पुनि आज सोई सरस रसाल तरु छाय जो सुखात है। भ्रमर विनीत भाव तजत अवै जो तव तो सम न नीच कोउ जगमै जनात है॥ ४७॥

रोला।

हरिणी गण मधि आज अधिक मद अंध गरव करि।
किम खेलसि हे कृष्णसार! (२) दृग मूंदि विपिन (३) भरि॥
मद झूमत गजराज कुम्भ पाटित मुक्ताको।
पूरित सीमा समभ सिंह खेलन वसुधाको (४)॥ ४८॥

दोहा।

जदपि जरत जठरागि तैं गजरिपु सिंह सुवीर।
तदपि हनै किमि मृगनको अभय जु आयो तीर॥ ४९॥

विदलित गजमुकुतानि तैं सोभित महि किय जौन।
अब निज बल कस हरिणतैं कहै केशरी तौन॥ ५०॥

रोला।

ठहरु न इक छन इहां अगम बन भूमि कठिन अति।
अरे सखे! मदअन्धनयन! तुम गजसमूहपति!॥
गजभ्रमतैं खर (५) नखनि खण्डि गुरु शिला खण्ड कांह।
सोवत है मृगराज आज यह गिरि गह्वर मंह॥५१॥

दोहा।

गजपतिशिशु! अति गरव करि गिरिमहं कबहु न घूम।
ह्वैहै शिशुहरिके (६) जगी गज विहीन यह भूम॥ ५२॥

---

(१) फूल। (२) काला मृग। (३) बन। (४) पृथ्वी।
(५) तेज। [६] सिंहका बच्चा।

शिखरिणी।

निसर्गाद् आरामे तरुकुल समारोप सुकृती ।
कृती मालाकारो बकुल मपि कुत्रापि निदधे ॥
इदं को जानीते यदय मिह कोणान्तरगतो ।
जगज्जालं कर्त्ता कुसुमभरसौरभ्यभरितम् ॥ ५३ ॥

शार्दूल विक्रीडित।

यस्मिन् वेल्लति सर्वत: परिचलत्कल्लोलकोलाहलै
र्मन्थाद्रिभ्रमणभ्रमं हृदि हरिदन्तावला: पेदिरे ॥
सो ऽयं तुङ्गतिमिङ्गिलाङ्गकवलीकारक्रियाकोविद: ।
क्रोडे क्रीडतु कस्य कालकलहत्यक्तार्णवो राघव: ॥ ५४ ॥

लूनं मत्तमतंगजै: कियदपि च्छिन्नं तुषारार्दितै: ।
शिष्टं ग्रीष्मजभीष्मभानुकिरणै र्भस्मीकृतं काननम् ॥
एषा कोणगता मुहु: परिमलै रामोदयंती दिश: ।
हा कष्टं ललिता लवंगलतिका दावाग्निना दह्यते ॥ ५५ ॥

स्वर्लोकस्य शिखामणि: सुरतरुग्रामस्य धामाद्भुतं ।
पौलोमीपुरुहूतयो: परिणति: पुण्यावलीना मसि ॥
सत्यं नन्दन ! किन्त्विदं सहृदयै र्नित्यं विधि: प्रार्थ्यते ।
त्वत्त: खाण्डवरङ्गताण्डवनटो दूरे ऽस्तु वैश्वानर: ॥ ५६ ॥

स्वस्वव्यापृतिमग्नमानसतया मत्तो निवृत्ते जने ।
चञ्चूकोटिविपाटितारपुटो यास्या म्यहं पञ्जरात् ॥
एवं कीरवरे मनोरथ मयं पीयूष मास्वादय ।
त्यन्त: सम्प्रविवेश वारणकराकार: फणिग्रामणी: ॥ ५७ ॥

रोला ।

तरु कुल रोपन चतुर कुशल माली उपवन मधं ।
निज सुभावतें कहूं लगायो याहि बकुल कहं ॥
यह को जानत काहु कौनमहं यह उगिहै जब ।
कुसुम पुञ्ज शुभ गन्ध भरित करिहै सब जग तब ॥ ५३ ॥

जेहि उछलत चहुँओर चलत जब तुँग तरङ्गन ।
मंदर मंथन सरिस करत शंका दिग्गजगन ॥
बड़ो तिमिंगिल (१) काय ग्रास करिवेमें बुधजो ।
राघवं (२) खेले गोद काहिके, भगरि सिंधु सो ॥ ५४ ॥

कवित्त ।

काननको नास्यो दलि मदतें सुमत्तगज शीत उत पात पनि कीनो बहु छति है । सेसहुतो जेतो ताहि ग्रीषम प्रचंड रवि किरण समूह करि दीन्हो छार अति है ॥ ता वनके कोने लगी जोई निज चारों दिसा सुमन पराग तें सुगन्धित करति है । याहि कठिनाई हाय सोई बरसातो आज ललिका लवंगको दवागितें जरति है ॥५५॥

रोला ।

सुरपुर चूड़ामणी सकल सुरतरु कहं भूषन ।
सची इन्द्र कहं विपुल पुन्यके ही फल पूरन ॥
नन्दन ! है यह सत्य सुजन तउ विधि तें जाचंहि ।
खाण्डव रँगनट अगिनि कबूँ तुव ढिग जिन आवहि ॥ ५६ ॥

निज निज कारज हेत सबै जब जैहैं बाहर ।
तोरि चोंचतें द्वार जाऊं निहचै तजि पंजर ॥
अस विचारमय अमिय कीर पीवन लाग्यो जब ।
करिको सूँड़ समान धस्यो अहि पंजर मधं तब ॥ ५७ ॥

---

(१) एक बड़ी मछली । (२) बड़ा मच्छ ।

शार्दूल विक्रीडित ।

रेचाञ्चल्यजुषो ! मृगाः ! श्रितनगाः कल्लोलमालाकुला ।
मेता मम्बुधिगामिनीं व्यवसिताः सङ्गाहितुं वा कथम् ॥
अत्रैवो च्छलदम्बुनिर्भरमहावर्त्तैः समावर्त्तितो ।
यद् ग्रावेव रसातलं पुन रसौ यातो गजग्रामणीः ॥ ५८ ॥

शिखरिणी ।

पिव स्तन्यं पोत ! त्व मिह मददन्तावलधिया ।
दृगन्ता नाधत्से किमिति हरिदन्तेषु परुषान् ॥
त्रयाणां लोकाना मपि हृदयतापं परिहरन् ।
अयं धीरं धीरं ध्वनति नवनीलो जलधरः ॥ ५९ ॥

उपगीति ।

धीरध्वनिभि रलं ते नीरद मे मासिको गर्भः ।
उन्मदवारणबुद्ध्या मध्ये जठरं समुच्छलति ॥ ६० ॥

अनुष्टुप् ।

वैतुण्डगण्डकण्डूतिपाण्डित्यपरिपन्थिना ।
हरिणाहरिणालीषु कथ्यतां कः पराक्रमः ॥ ६१ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

नीराच्निर्मलतो जनि र्मधुरता वामामुखस्पर्द्धिनी ।
वासो यस्य हरेः करे परिमलो गीर्वाण चेतोहरः ॥
सर्वस्वं तदहो महाकविगिरां कामस्य चाम्भो रुह ! ।
त्व ञ्चे त्प्रीतिमुरीकरोषि मधुपे त त्वां किमाचक्ष्महे ॥ ६२ ॥

उपगीति ।

लीलामुकुलितनयनं किं सुखशयनं समातनुषे ।
परिणामविषमहरिणा करिनायक ! वर्द्धते वैरम् ॥ ६३ ॥

अनुष्टुप् ।

विदुषां वदना द्वाचः सहसा यान्ति नो वहिः ।
याता श्चे न्न पराञ्चन्ति द्विरदानां रदा इव ॥ ६४ ॥

रोला।

रे चञ्चल! मृगसवै! शैलवासी! किमि गाहत?।
बहु तरङ्ग जुत नदी, समुदसों मिलि जो बाहत॥
देखहु याही ठाम भ्रमत जह नीर समाजहु।
गो, पखान सम घूमि रसातल महं गजराजहु॥ ५८॥

अरे केशरीतनय! करहु पय पान मोद भरि।
जानि मत्तगज चहूं ओर किमि लखत रोष करि।
तीन भुवन कहं सकल जीवको हृदय तापहर।
नवल नील मृदु मन्द मन्द गरजत यह जलधर॥ ५९॥

दोहा।

अहो मेघ मति गरजु अब मेरो मासिक गर्भ।
जानि मत्तगज उदरमधि उछलत आज सगर्ब॥ ६०॥

करि कपोल पाटन करन कुशल केशरी जौन।
हरिण जूथ पै कसकरै बल प्रकाश निज तौन॥ ६१॥

रोला।

विमल नीरतें जनम मधुरता वामा मुख सम।
पुनि हरि कर महं वास गन्ध सुरमनहर उत्तम॥
सरवस हौ तुम कमल! काम अब महा कविनकहं।
काह काह्रं तब तोहि प्रीति जब करत मधुप महं॥ ६२॥

दोहा।

क्यों? विलासतें मूदि दृग,सुख सोवत गजराज।
अन्तविषम रिपु सिंहतें वैर बढ़त है आज॥ ६३॥

बुध सुखतें कबहूं बचन वेगिहि नहि प्रगटात।
निकरि फेर पलटत नहीं जिमि गज गनको दांत॥ ६४॥

शार्दूल विक्रीड़ित।

औदार्यं भुवनत्रये पि विदितं सम्भूति रम्भोनिधे
र्वासो नन्दनकानने परिमलो गीर्वाणचेतोहरः।
एवं दातृगुरो र्गुणाः सुरतरोः सर्वेपि लोकोत्तराः
स्यादर्थि प्रवरार्थितार्पणविधा वेको विवेको यदि ॥ ६५ ॥

एको विश्वसतो हरा म्यपघृणः प्राणा नहं प्राणिनाम्।
इत्येवं परिचिन्त्य मा स्वमनसि व्याधानुतापं कृथाः ॥
भूपानां भवनेषु किञ्च विमलक्षेत्रेषु गूढाशयाः।
साधूना मरयो वसन्ति कतिनो त्वत्तुल्यकक्षाः खलाः ॥ ६६ ॥

गीति।

विश्वास्य मधुरवचनैः साधून् ये वञ्चयन्ति नम्रतमाः।
ता नपि दधासि मातः! काश्यपि! यात स्तवापि च विवेकः ॥६७॥

वसन्त तिलक।

अन्या जगद्धितमयी मनसः प्रवृत्ति
रन्यैव कापि रचनावचनावलीनाम्।
लोकोत्तरा च कृति राकृति रार्त्तहृद्या
विद्यावतां सकल मेव गिरां दवीयः ॥ ६८ ॥

आपद्गतः किल महाशयचक्रवर्त्ती विस्तारय त्यकृतपूर्वमुदारभावम्।
कालागुरु र्दहनमध्यगतः समन्तात्लोकोत्तरं परिमलं प्रकटीकरोति६९

वसन्त तिलक।

विश्वाभिराम गुणगौरवगुम्फितानाम्
रोषो ऽपि निर्मलधियां रमणीय एव।
लोकम्पृणैः परिमलैः परिपूरितस्य
काश्मीरजस्य कटुतापि नितान्तरम्या ॥ ७० ॥

रोला।

त्रिभुवन विदितउदार जनम जलनिधितें जाको।
नन्दन वनमें बास गन्ध सुरमनहर ताको ॥
दानी गुरु सुरविटपकेर उत्तम गुण हैं सब।
वर याचक अभिलषित दानमधि हो विचार जब ॥ ६५ ॥

सवैया।

जे बिस्वास करें हमपै तिहि जीवको निर्दय होय मैं मारत।
व्याध अहो ! तू विचारिकै यों मनमैं निज तापहि क्यों नितधारत ॥
भूपनके घरमै अरु तीरथमे रहै जे अति दुष्टता पारत।
साधुनके रिपुहैं खलतो सम भूतलमध्य अनेक विहारत ॥ ६६ ॥

चौपाई।

कहि मृदु वचन नम्रता कीन्ही।
दै विसास साधुहिं ठगि लीन्ही ॥
मातु ! धरणि ! तिहिं जो तुम धारो।
तब तुम्हार ह्व नस्यो विचारो ॥ ६७ ॥

रोला।

सदा जगत हित भरो जासुको मन विचारहै।
पुनि विचित्र अति वचन रचनह्व तिहि उदारहै ॥
अति उत्तम शुभकर्म रूप आरत मन हारत।
पण्डित जनको सकल काज कोउ कहि नहि पारत ॥ ६८ ॥

महादुखितहू सदा महाशयराज सुधी जन।
फैलावतहै अधिक आपनो नित उदारपन ॥
नील अगरु है जरत जदपि अति कठिन अगिनिमाहं।
अति उत्तम चहुँ ओर पसारत तउ परिमल काहं ॥ ६९ ॥

जगत मनोहर सुगुण शील गौरवतें शोभित।
विमल बुद्धि जुत विदुष जननको रोषहु है हित ॥
लोक सुखद शुभ गन्ध जाल भर पूर उदर की।
अतिहोहै रमणीय कटुकता हू केसरकी ॥ ७० ॥

शार्दूल विक्रीडित।

लीलालुण्ठितशारदापुरमहासम्पद्भराणां पुरो।
विद्यासद्मविनिर्गलत्कणमुषो वल्गन्ति चेत्पामराः॥
अद्यश्वाः फणिनां शकुन्तशिशवो दन्तावलानां वृकाः।
सिंहानां च सुखेन मूर्द्धसुपदं धास्यन्ति शालावृकाः॥७१॥

उपजाति।

गीर्भि र्गुरूणां परुषाक्षराभि स्तिरस्कृता यान्ति नरा महत्त्वम्।
अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणां न जातु मौलौ मणयो वसन्ति॥७२॥

पुष्पिताग्रा।

वहति विषधरान् पटीरजन्मा शिरसि मसीपटलं दधाति दीपः।
विधु रपि भजते तरां कलङ्कं पिशुनजनं खलु बिभ्रति क्षितीन्द्राः॥७३॥

वसन्त तिलक।

सत्पूरुषः खलु हिताचरणै रमंद मानन्दयत्यखिललोक मनुक्त एव।
आराधितःकथय केन करै रुदारै रिन्दु र्विकाशयति कैरविणी कुलानि७४

उद्गीति।

कृत मपि महोपकारं पय इव पीत्वा निरातंकम्।
प्रत्युत हन्तुं यतते काकोदरसोदरः खलो जयति॥ ७५॥

शार्दूल विक्रीडित।

पाण्डित्यं परिहृत्य यस्य हि कृते बन्दित्व मालम्बितं।
दुष्प्रापं मनसा पि यो गुरुतरैः क्लेशैः पदं प्रापितः॥
रूढ स्तत्र स चे न्निगीर्य सकलां पूर्वोपकारावलीं।
दुष्टः प्रत्यवतिष्ठते तदधुना कस्मै किं माचक्ष्महे॥ ७६॥

शिखरिणी।

परार्थव्यासङ्गा दुपजहद पि स्वार्थपरता
ममेदैकत्वं यो वहति गुरुभूतेषु सततम्।

सवैया।

जो सुविलासतेँ भारती भौनको सम्पति आपुने हीयमैं धारो।
सामुहे ताहिके थोरे पढ़े जन बोलत बैन जो गर्व पसारो॥
आजको जायो विहंगहू सर्पपै दन्तिके सीसपै बैठिहै स्यारो।
सिंहनके सिरपै सुखसो पदधारिहै तो अब स्वानको वारो॥ ७ ॥

दोहा।

तर्जित गुरु कटु बचनतेँ पावत नर सनमान।
रहत न नृप सिरपै मणी जबलौ घिसत न सान॥ ७२॥

चन्दन धारत सर्पको कज्जल धारत दीप।
चन्दहु रखत कलङ्कको दुर्जन रखत महीप॥ ७३॥

रोला।

जगमधि जे सतपुरुष सुकारण करि सबही हित।
बिना कहेहू सकल लोकको करत अनन्दित॥
कहौ चन्दतेँ कौन ? विमल जो कर पसारि नित।
अखिल कुमुद बन जाल मालको करत विकासित॥ ७४॥

दोहा।

कृत महान उपकारको खल पय सम करिपान।
भय तजि तिहिं उलटे हतन चाहत सर्प समान॥ ७५॥

कवित्त।

छोड़ि मरजाद पण्डिताईकी अवैही हम जाके हेत बन्दी जन होय कविता कीहै। अतिही कठिन दुःख सहिकै पठायो तिहिं थानमैं जहापै गति नाहि मनसाकी है॥ उपकार सकल विसारि कृत पूरवको बैठि ताहि पदपै न राख्यो रीति वाकी है। सोई दुष्ट मोतैं आज करत बुराई तब कापै कहँ जायकै हवाल यह ताकी है॥७६॥

स्वभावाद् यस्यान्तः स्फुरति ललितोदात्तमहिमा
समर्थो यो नित्यं स जयतितरां को पि पुरुषः ॥ ७७ ॥

गीति ।

वंशभवो गुणवा नपि सङ्गविशेषेण पूज्यते पुरुषः ।
नहि तुम्बीफलविकलो वीणादण्डः प्रयाति महिमानम् ॥७८॥

आर्या ।

अमितगुणो ऽपि पदार्थो दोषेणै केन निन्दितो भवति ।
निखिलरसायनमहितो गन्धे नोग्रेण लशुन इव ॥ ७९ ॥

उपगीति ।

उपकार मेव तनुते विपद्गतः सद्गुणो नितराम् ।
मूर्च्छां गतो मृतो वा निदर्शनं पारदो च रसः ॥ ८० ॥

शिखरिणी ।

वनान्ते खेलन्ती शशकशिशु मालोक्य चकिता ।
भुजप्रान्तं भर्त्तु र्भजति भयहर्त्तुः सपदि या ॥
अहो सेयं सीता दशवदन नीता हलरदैः ।
परीता रक्षोभिः श्रयति विवशा का मपि दशाम् ॥ ८१ ॥

पुरो गीर्वाणानां निजभुजबलाहोपुरुषिकाम् ।
अहोकारंकारं पुरभिदि शरं सम्मुखयतः ॥
स्मरस्य स्वर्बालानयनशुभमालार्चनपदम् ।
वपुः सद्यो भालानलभसितजालास्पद मभूत् ॥ ८२ ॥

उपजाति ।

युक्तं सभायां खलु मर्कटानाम् शाखा स्तरूणां मृदुलासनानि ।
सुभाषितं चीत्कृति रातिथेयी दन्तै र्नखाग्रै श्च विपाटितानि ॥८३ ॥

रोला।

निज कारजको त्यागि दूसरेको हित साधत।
सकल जीव महं एक भाव जो निस दिन बांधत॥
जाके जियमें सहज ललित अति महिमा सरसत।
नित समरथ तिहि पुरुषवीर जगमधि जय दरसत॥ ७७॥

दोहा।

गुणी वंसभव संगतै जगमें होत महान।
नहि तुमड़ी बिन बीनकी दण्डहु पावत मान॥ ७८॥

सकल गुणाकर वस्तुहू एक दोष जुत जोय।
महा रसायन लसुन सम निंदा गन्धतैं होय॥ ७९॥

उत्तम जन अति दुखितहू करत सदा उपकार।
मारो हू पारा सुरस जिमि गुन करत उदार॥ ८०॥

सवैया।

खेलत कानन कुञ्जनमें लखि वाल शशाहुको चौंकिकै धावती।
जो अति वेगिहितैं भय भञ्जन रामको दौरिकै अङ्क लगावती॥
हाय हरीगई रावनतैं सोइ रोवति नैननि आंसू बहावती।
घेरी हुई निसिचारिनतैं विवशाह्नि सियाजू महादुख पावती॥ ८१॥

रोला।

सुरन सासुहि सदा बाहु बल गर्व दिखायो।
जवै मदन धनु तानि शंभुपै बान चलायो॥
सुरनारी शुभ नयन माल पूजित तिहिंको तन।
भयो भसम शिव भाल वह्नितैं अहो! तिहीं छन॥ ८२॥

दोहा।

तरु शाखा आसन मृदुल चीत्क्रति मधुर अवाज।
नख दन्तन काटव उचित स्वागत कपिन समाज॥ ८३॥

शार्दूलविक्रीडित।

किं तीर्थं ? हरिपादपद्मभजनं किं रत्न ? मच्छामतिः।
किं शास्त्रं ? श्रवणेन यस्य गलति द्वैतान्धकारोदयः॥
किं मित्रं सततोपकाररसिकं ? तत्वावबोधः सखे।
कः शत्रु र्वद खेददानकुशलो ? दुर्वासना सञ्चयः॥ ८४

अनुष्टुप।

निष्णातो ऽपि च वेदान्ते साधुत्वं नैति दुर्जनः।
चिरं जलनिधौ मग्नो मैनाक इव मार्दवम्॥ ८५

नैर्गुण्य मेव साधीयो धिग स्तु गुणगौरवम्।
शाखिनो ऽन्ये विराजन्ते खण्ड्यन्ते चन्दनद्रुमाः॥ ८६

परोपसर्पणानन्त चिन्तानलशिखाशतैः।
अचुम्बितान्तःकरणाः साधु जीवन्ति पादपाः॥ ८७

आर्या।

शून्ये पि च गुणवत्ता मातन्वानः स्वकीयगुणजालैः।
विवराणि मुद्रयन् द्रागूर्णायु रिव सुजनो जयति॥ ८८

अनुष्टुप्।

खलः सज्जनकार्पासरक्षणैकहुताशनः।
परदुःखाग्निशमने मारुतः कैन वर्ण्यताम्॥ ८९

आर्या।

परगुह्यगुप्तिनिपुणं गुणमय मखिलैः समीहितं नितराम्।
ललिताम्बर मिव सज्जन माखव इव दूषयन्ति खलाः॥ ९०

अनुष्टुप्।

कारुण्यकुसुमाकाशः शान्तिशैत्यहुताशनः।
यशःसौरभ्य लशुनः खलः सज्जनदुःखदः॥ ९१

कवित्त।

तीरथ है कौन ? हरि चरण सरोज सेवा रत्न कौन ? आपनी जो बुद्धि अवदात है। शास्त्र कौन ? जाहिके सुनत मांहि ताही छन चित्तको दुविध अन्धकार मिटि जात है॥ मित्र कौन रैन दिन हितको करनवारो ? सुखप्रद जौन ब्रह्मज्ञान प्रगटात है। अति दुखदाई शत्रु कौन है ? जगतकेर सकल कुवासना जो मनमें दिखात है॥ ८४॥

दोहा

दुर्जन पढ़ि वेदान्तहू साधु न होत मनाक।
जिमि नित रहत समुद्रमें मृदु न बनत मैनाक॥ ८५॥

धिक गुणगौरव जगतमें निगुण सुखी दरसात।
वनमें तरु राजत सबै चन्दन काट्यो जात॥ ८६॥

पराधीनचिन्ता अनल ज्वाला शलतें नाहि।
जर्‍यो हृदय अस विटप गण जीवत हैं सुखमाहि॥ ८७॥

सूमहुमें जो आपनो फैलावत गुन जाल।
बुधजन मूँदत छिद्रको मकरीसम ततकाल॥ ८८॥

जे खल सुजन कपासके रच्छक अनल समान।
परदुख पावक पवनजो तिहिको सकत बखान॥ ८९॥

परदूषन गोपन चतुर गुणी जु प्रिय सबकेर।
सु-वसन सम सुजनहि छिदत खल मूषक सम हेर॥ ९०॥

दया-कुसुमको नभ, अनल शांति-शीतके हेत।
यश-सुगन्धको लसुन-खल सज्जनको दुखदेत॥ ९१॥

वसन्ततिलक ।

धत्ते भरं कुसुमपत्त्रफलावलीनाम्
मर्मव्यथां स्पृशति शीतभवां रुजञ्च ।
यो देह मर्पयति चान्यसुखस्य हेतो
स्तस्मै वदान्यगुरवे तरवे नमो ऽस्तु ॥ ८२

हालाहलं खलु पिपासति कौतुकेन
कालानलं परिचुचुम्बिषति प्रकामम् ।
व्यालाधिप ञ्च यतते परिरब्धु मद्धा
यो दुर्जनं वशयितुं कुरुते मनीषाम् ॥ ८३

प्रहर्षिणी ।

शोभानि प्रतिपरिहाय शुष्कशस्या न्यौदार्यं प्रकटयतो महीधरेषु ।
औन्नत्यं परम मवाप्य दुर्मदस्य ज्ञातो ऽयं जलधर! ते यथा विवेकः॥८४

आर्या ।

गिरयो गुरव स्तेभ्यो ऽप्युर्वी गुर्वी ततो ऽपि जगदण्डम् ।
तस्मा दप्यतिगुरवः प्रचले ऽप्यचला महात्मानः ॥ ८५

व्योम्नि स वासं कुरुते चित्रं निर्माति सुन्दरं पवने ।
रचयति रेखाः सलिले चरति खले यस्तु सत्कारम् ॥ ८६

अनुष्टुप् ।

हारं वक्षसि केनापि दत्त मज्ञेन मर्कटः ।
लेढि जिघ्रति संक्षिप्य करो त्युन्नत माननम् ॥ ८७

गीति ।

मलिने पि रागपूर्णां विकसितवदना मनल्पजल्पे पि ।
त्वयि चपले पि च सरसां भ्रमर! कथं वा सरोजिनीं त्यजसि ॥८८

रोला।

कुसुम पत्र फल पुञ्ज भारको जो नित धारत।
अति दुख दाई शीत जनित बहु रोगहु धारत॥
अपर मनुज सुखहेत आपनो देहहु त्यागत।
अस दानीगुरु विटप ताहि प्रणमत हम रागत॥ ८२॥

सो, कौतुकतें मनुज हलाहल पीवन चाहत।
कालानलको अभय दौरि पुनि चुम्बन चाहत॥
सर्पराजको पकरि अङ्कभरि लैबो चाहत।
जो दुर्जनको करि उपाय वशकरिबो चाहत॥ ८३॥

जो तुम करिके त्याग शुष्क तृण लता दीनकहं।
निज उदारता प्रगट करत ऊंचे गिरिगन महं॥
अति उन्नतिको पाय भयो दुर्मदको ढेरो।
जान्यो जैसो है विवेक यह जलधर! तेरो॥ ८४॥

दोहा।

गिरि गुरु, तातें गुरु मही, तातें गुरुब्रह्मण्ड।
तातें अति गुरु महत जन रहत सदा जु अखण्ड॥ ८५॥

वास करत नभमें, रचत चित्र पवन मझधार।
रेख लिखत जलमांह जे किय खलको सतकार॥ ८६॥

डार्यो बानरके गरे कोउ मूरख हार।
सो चाटत सूंघत तजत सिर उठाय बहुबार॥ ८७॥

रोला।

अहो जदपि तुम मलिन तदपि वह रँग परिपूरित।
बहु भाषत तुम तदपि रखति सुख वह सुविकासित॥
अहो चपल तुम जदपि तदपि वह सरस रहति नित।
कहो मधुप! किमि तजत कमलिनीसो अपनो हित?॥ ८८॥

वसन्ततिलक।

स्वार्थं धनानि धनिकात् प्रतिगृह्णतो यत्
आस्यं भजेन्मलिनतां किमिदं विचित्रम्।
गृह्णन् परार्थमपि वारिनिधेः पयोऽपि
मेघोऽयमेति सकलोऽपि च कालिमानम्॥ ९९॥

आर्या।

जनकः सानुविशेषो जातिः काष्ठं भुजङ्गमैः सङ्गः।
स्वगुणैरेव पटीरज! यातोऽसि तथापि महिमानम्॥ १००॥

शार्दूलविक्रीडित।

कस्मै हन्त फलाय सज्जन! गुणग्रामार्जने सज्जसि।
स्वात्मोपस्करणाय चेन्मम वचः पथ्यं समाकर्णय॥
ये भावा हृदयं हरन्ति नितरां शोभाभरैः सम्भृताः।
तैरेवास्य कलेः कलेवरपुषो दैनन्दिनं वर्धनम्॥ १०१॥

वसन्ततिलक।

धूमायिता दशदिशो दलितारविन्दा
देहं दहन्ति दहना इव गन्धवाहाः।
त्वामन्तरेण मृदुताम्रदलाम्रमञ्जु-
गुञ्जन्मधुव्रत! मधो! किल कोकिलस्य॥ १०२॥

भिन्ना महागिरिशिलाः करजाग्रजाग्र-
दुद्दामशौर्यनिकरैः करटिभ्रमेण।
दैवे पराचि करिणामरिणा तथापि
कुत्रापि नापि खलु हा पिशितस्य लेशः॥ १०३॥

गीति।

गर्जितमाकर्ण्य मना गङ्के मातुर्निशार्द्धजातोऽपि।
हरिशिशुरुत्पतितुंद्रागङ्गान्याकुञ्चत्र लीयते निभृतम्॥१०४॥

रोला।

स्वारथलगि धन धनिक जननतें लेत कोऊ जब।
यहै आचरज काह वदन जो होय मलिन तव॥
पर कारज लगि मेघ उदधितें लेत वारि कन।
तऊ स्याम ह्वै जात तासुको सकल सुभग तन॥ ९९॥

दोहा।

जाति काठ पर्वत पिता रहत भुजङ्गम सङ्ग।
चन्दन तउ निज गुणहितें पायो मान अभङ्ग॥ १००॥

रोला।

सज्जन! किहिं फलहेत करत सञ्चय गुन गनको।
यदि उन्नति लगि, तबै सुनहु मम हित वातनको॥
हृदय हरत जे भाव सकल शोभा परिपूरन।
तातें बाढ्यो कलह ताहि कलि छोडु दूहीं छन॥ १०१॥

छायो दस दिसि अन्धकार, पुनि खिले सरनमहं।
नीरज दाहत देह, अनल सो विविध गन्धवह॥
जहं रसालके मृदुल अरुन दलपै अलि गुञ्जत।
ऐसे दिन ऋतुराज आज कोकिल दुख भुञ्जत॥ १०२॥

कठिन नखनके उग्र अग्र भागनतें वलभरि।
फाख्यो वर गिरि शिलाखण्ड कहं गजको भ्रमकरि॥
हाय! दैवके विमुख भयेतें यों चहुं देसहु।
पायो गजरिपु सिंह नाहिं आमिषको लेसहु॥ १०३॥

दोहा।

नेकहु गजको गरज सुनि हरिसुत जननी गोद।
शिशिटि अङ्ग निज वेगिहीं उछल्यो चहत समोद॥१०४॥

प्रमिताक्षरा

कि मह्यं वदामि खलु दिव्यतमं गुणपक्षपात मभितो भवत: ।
गुणशालिनो निखिलसाधुजनान् य दहर्निशं न खलु विस्मरसि ॥१०५॥

आर्या ।

रेखल ! तव खलु चरितं विदुषां मध्ये विविच्य वक्ष्यामि ।
अथवा ऽलं पापात्मन् ! कृतया कथया पि ते हतया ॥ १०६ ॥

अनुष्टुप् ।

आनन्दमृगदावाग्नि: शीलशाखिमदद्विप: ।
ज्ञानदीपमहावायु रयं खलसमागम: ॥ १०७ ॥

खला स्तु कुशला: साधुहितप्रत्यूहकर्मणि ।
निपुणा: फणिन: प्राणा नपहर्तुं निरागसाम् ॥ १०८ ॥

औपच्छंदसिक ।

वदने विनिवेशिता भुजङ्गी पिशुनानां रसनामिषेण धात्रा ।
अनया कथ मन्यथा वलीढा नहि जीवन्ति जना मना गमन्त्रा: ॥१०९॥
कृतं महोन्नतं कृत्य मर्जितं चामलं यश: ।
वायज्जीवं सखे ! तुभ्यं दास्यामो विपुलाशिष: ॥ ११० ॥

द्रुतविलंबित ।

अविरतं परकार्यकृतां सतां मधुरिमातिशयेन वचो ऽमृतम् ।
अपिच मानस मम्बुनिधि र्यशो विमलशारदपार्वणचन्द्रिका ॥ १११ ॥

अनुष्टुप् ।

निर्गुण: शोभते नैव विपुलाडम्बरो ऽपि ना ।
आपातरम्यपुष्पश्री शोभिता शाल्मलि र्यथा ॥ ११२ ॥

पङ्के विना सरो भाति सद: खलजनै र्विना ।
कटुवर्णै र्विना काव्यं मानसं विषयै र्विना ॥ ११३ ॥

दोहा।

काह कहूं खल ! यह अकथ गुन याहूका तोर।
गुन शोभित सब सुजनको न बिसारसि निसि भोर ॥१०५॥

रे खल ! तेरे चरितको बुधमधि कहुन बिचार।
अथवा पापिनकी कथा कहिय न एको बार॥ १०६ ॥

आनंद मृगको बनअगिनि शोक विटप गजराज।
ज्ञान दीपको पवन सम है यह दुष्ट समाज ॥ १०७ ॥

साधुनके हित हतनमें खल जन कुशल महान।
चतुर फणी गण हरनमें निरपराधके प्रान ॥ १०८ ॥

विधि रसना मिस सर्पिणी राखी खल मुख माहिं।
मन्त्रहुते याको डस्यो कोउ जन जीवत नाहिं ॥ १०९ ॥

कारज अति उत्तम कियो लियो सुजस अवदात (१)।
जीवन भरि तोहि देइहों बहु असीस हेभ्रात ! ॥ ११० ॥

रोला।

निस दिन पर जनकेर काज जो करत साधु जन।
अमिय सरिस अति मधुर ताहिको रहत सुबोलन ॥
अहै तासु गम्भीर सदा जलनिधि सम मानस।
अहै सरदके विमल पूर्ण विधु सरिस तासु जस ॥ १११ ॥

दोहा।

करत वेष बहु विधि तऊ मूरख सोभत नांहि।
गन्ध हीन जिमि सुमन युत सेमर लगत सदाहि ॥ ११२ ॥

सर सोहत बिन पङ्क पुनि सभा दुष्ट जन हीन।
कटु अक्षर बिन काव्य अरु मानस विषय विहीन ॥ ११३ ॥

---

(१) स्वच्छ।

अनुष्टुप्।

तत्त्वं किमपि काव्यानां जानाति विरलो भुवि।
मार्मिकः को मरन्दाना मन्तरेण मधुव्रतम्॥ ११४॥

सरजस्कां पाण्डुवर्णां कण्टकप्रकरान्विताम्।
केतकीं सेवसे हन्त कथं रोलम्ब! निस्त्रप!॥ ११५॥

यथा तानं विना रागो यथा मानं विना नृपः।
यथा दानं विना हस्ती तथा ज्ञानं विना यतिः॥ ११६॥

सन्तः स्वतः प्रकाशन्ते गुणा न परतो नृणाम्।
आमोदो नहि कस्तूर्याः शपथेन विभाव्यते॥ ११७॥

मालिनी।

अपि बत गुरु गर्वं मा स्म कस्तूरि! यासी
रखिलपरिमलानां मौलिना सौरभेण।
गिरिगहनगुहायां लीन मत्यन्तदीनं
स्वजनक मसुनैव प्राणहीनं करोषि॥ ११८॥

वसन्ततिलका।

दूरीकरोति कुमतिं विमलीकरोति।
चेत श्चिरन्तन मघ चुलुकी करोति॥
भूतेषु किञ्च करुणां बहुलीकरोति।
सङ्गः सतां किमु न मङ्गल मातनोति॥ ११९॥

गीति।

अनवरतपरोपकारव्यग्रीभवदमलचेतसां महताम्।
आपातकाटवानि स्फुरन्ति वचनानि भेषजानीव॥ १२०॥

दोहा ।

सत काव्यनके तत्वको कोउ जानत जग माहिं ।
बिन अलि मरम परागको कोऊ जानत नाहिं ॥ ११४ ॥

पांडु वरन पुनि रज सहित कण्टक भरो सरीर ।
रेनिलज्ज ! अलि ! कस रहत तासु केतको तीर ॥ ११५ ॥

बिना तानके राग जस जैसे नृप बिन मान ।
जैसे गज मदधार बिन तस जोगी बिन ज्ञान ॥ ११६ ॥

नहि जनात परके कहे गुन आपुहि सरसात ।
कस्तूरीको गन्ध नहि किये सौंह प्रगटात ॥ ११७ ॥

रोला ।

जगत निखिल सुभ गन्ध मुकुटभूषण सौरभतें ।
अरे ! अरे ! कस्तूरि ! करसि जनि महत गरवतें ॥
जे मृग गिरि बन गुहा मांहि छिपि रहत दीन अति ।
तिहि जनकहु इहिं हेत करति बिन प्राण मन्दमति ॥११८॥

करत कुमतिको दूर चित्तको विमल करत है ।
कत बहु पूरब पाप पुञ्जको पान करत है ॥
पुनि सब जीवनमाह दयाको दोह (१) करत है ।
सज्जन जनको सङ्ग काह मङ्गल न करत है ॥ ११९ ॥

दोहा ।

निस दिन पर उपकाररत रहत विमल मन जासु ।
ऊपरहीतें कटु बचन है भेषज सम तासु ॥ १२० ॥

---

(१) बड़ा ।

प्रहर्षिणी।

व्यागुञ्जन्मधुकरपुञ्जमञ्जुगीता
न्याकर्ण्य श्रुतिमदजा लयातिरेकात्।
आभूमीतलनतकन्धराणिमन्ये
ऽरण्ये ऽस्मिन्नवनिरुहां कुटुम्बकानि॥ १२१॥

उपजाति।

मृतस्य लिप्सा कृपणस्य दित्सा विमार्गगाया च रुचिः स्वकान्ते।
सर्पस्य शांतिः कुटिलस्य मैत्री विधातृसृष्टौ नहि दृष्टपूर्वा॥ १२२॥

अनुष्टुप्।

उत्तमाना अपि स्त्रीणां विश्वासो नैव विद्यते।
राजप्रियाः कैरविण्यो रमन्ते मधुपैः सह॥ १२३॥

अयाचितः सुखं दत्ते याचितश्च न यच्छति।
सर्वस्वं चापि हरते विधिरुच्छृङ्खलो नृणाम्॥ १२४॥

शार्दूलविक्रीडित।

दोर्दण्डद्वयकुण्डलीकृतलसत्कोदण्डचण्डाशुग
ध्वस्तोद्दण्डविपक्षमण्डल मथ त्वां वीक्ष्य मध्ये रणम्।
वल्गद्गाण्डिवमुक्तकाण्डवलयज्वालावलीतांडव
भ्रश्यत्खांडवरुष्टपांडव महो को न क्षितीशः स्मरेत्॥१२५॥

अनुष्टुप्।

खंडितानेत्रकञ्जालिमञ्जुरञ्जनपंडिताः।
मंडिताखिलदिक्प्रान्ता श्चंडांशोः पान्तु भानवः॥ १२६॥

इति प्रास्ताविकः प्रथमविलासः समाप्तः।

रोला।

गुञ्जत मधुकर पुञ्ज तासु मृदु गान श्रवणकरि।
उपज्यो सुनि हिय हर्ष ताहितें गयो हीय भरि॥
तिहीं हेत सब झुक्यो भूमिलौं है शाखा नत।
राजत अस तरु यूथ याहि वनमधि हम जानत॥ १२१॥

दोहा।

कृपण दान इच्छा मृतक कुलटा रुचि पतिमाहिं।
कुटिल प्रेम सुख सर्पको जगमहं देख्यो नाहिं॥ १२२॥

उत्तमहू नारीनको अहै नहीं विस्वास।
द्विजपति(१)प्रिय कुमुदिनि तऊ करत मधुप संग वास॥१२३॥

बिन मांगे सुख देत है मांगे ते नहिं देत।
दैव होत प्रतिकूल जब सरवसही हरि लेत॥ १२४॥

कवित्त।

बाहुदंड युगल उठाय खैंच्यो गाढ़े जब धनुदंड कुँडल समान दरसात है। तापे परचंड बाण झुंडन चलायो तब रिपु वरिवंड खंड खंडित है जात है॥ युद्ध मध्य ऐसो तोहि पेखि, धनु गांडिवके बान ज्वाल जाख्यो जो सुखांडव लखात है। ता बनमें कुत्र पंडुपुत्र को न यादकरै ऐसो को छतीस भूमि मंडल दिखात है॥ १२५॥

दोहा।

विकसित लोचन कमल बन मृदु रञ्जन परवीन।
याहि मोहि रवि किरनसों मंडित चहुँ दिस कौन॥१२६॥

इति प्रास्ताविक प्रथमविलास समाप्त।

---

(१) चन्द्र या ब्राह्मण।

अथ द्वितीयविलास ।

औपच्छसिकं ।

न मना गपि राहुरोधशङ्का न कलङ्कानुगमो न पाण्डुभावः ।
उपचीयत एव कापि शोभा परितो भामिनि ! ते मुखस्य नित्यम् ॥१॥

औपच्छसिकं ।

नितरां परुषा सरोजमाला न मृणालानि विचारपेशलानि ।
यदि कोमलता तवाङ्गकाना मथ का नाम कथापि पल्लवानाम् ॥२॥

बसन्त तिलक ।

खेदाम्बुसान्द्रकणशालिकपोलपाली
दोलायितश्रवणकुंडलवन्दनीया ।
आनन्द मंकुरयति स्मरणेन कापि
रम्या दशा मनसि मे मदिरेक्षणायाः ॥ ३ ॥

कस्तूरिकातिलक मालि ! विधाय सायं
स्मेरानना सपदि शीलय सौधमौलिम् ।
प्रौढिं भजन्तु कुमदानि मुदा मुदारा
मुल्लासयन्तु परितो हरितो मुखानि ॥ ४ ॥

त च्यक्षु मन्दहसितं श्वसितानि तानि
सा वै कलंकरहिता मधुरा ननश्रीः ।
अद्यापि मे हृदय मुन्मदयन्ति हन्त
सायन्तनाम्बुजसहोदरलोचनायाः ॥ ५ ॥

द्वितीयविलास।

दोहा।

राहु ग्रास भय नैक नहि नहि कलङ्क नहि सेत।
प्यारी! तो मुख चहुँ दिसा अद्भुत सोभा देत॥ १॥

अति करकस है कमल पुनि कमल नाल मृदु नाहिं।
बात कहा पल्लवहुको तुव तन मृदुता माहिं॥ २॥

सवैया।

सेद सुनीरनके घन विन्दुतैं शोभित शुभ्र कपोल है जाको।
झूमत चञ्चल कुँडल तापर बाढ़ि रह्यो तिहितैं छविताको॥
होमै अनन्द बढावत है सुमिरे अनङ्ग दुति ताहि दसाको।
सो सुखमा नहि जात कही मदमत्त सुखञ्जन नैनी प्रियाको॥३॥

सांझ समै सखिरी मृगनाभिके सुन्दर विन्दुतैं भाल संवारी।
त्यों मुसुकाती हुई अबही चढ़िके कछु सोभित ऊंची अटारी॥
तो मुखचन्द विलोकि तबै खिलि जावै सुकैरव(१)की सब क्यारी।
"विप्रसुचन्दजू" पूनम रैनसी होवै चहूंदिसिमैं उजियारी॥ ४॥

मञ्जुल मन्दहि मन्द सुहास उसासनको पुनि लेइबो ताको।
सो अति स्वच्छ कलङ्क बिहीन मनोहर आननको छविवाको॥
आजहु हाय हमारे हियेकहु मत्त करै सुमिरे वहु झांको।
सांझके पङ्कजसे कछु कुञ्चित सुन्दर लोचनवारी प्रियाको॥५॥

(१) कमल।

बसन्ततिलक।

प्रातस्तरां प्रणमने विहिते गुरूणा
माकर्ण्यवाच ममलां भव पुत्रिणीति।
नेदीयसि प्रियतमे परमप्रमोद
पूर्णादरं दयितया दधिरे दृगन्ताः॥ ६॥

पुष्पिताग्रा।

गुरुजनभयमद्विलोकनान्तः समुदयदाकुलभावमुद्वहन्त्याः।
दरदलदरविन्दसुन्दरे हा हरिणदृशो नयने न विस्मरामि॥ ७॥

वदरामलकाम्रदाडिमाना मपहृत्य श्रिय मुन्नतौ क्रमेण।
अधुना हरणे कुचौ यतेते दयिते ते करिशावकुम्भलक्ष्म्याः॥८॥

उपजाति।

कपोलपालीं तव तन्वि! मन्ये लावण्यधन्ये! दिश मुत्तराख्यां।
आभाति यस्यां ललितालकायां मनोहरा वैश्रवणस्य लक्ष्मीः॥९॥

बसन्त तिलक।

नीवीं नियम्य शिथिला मुषसि प्रकाश
मालोक्य वारिजदृशः शयनं जिहासोः।
नैवा वरोहति कदापि च मानसा न्मे
नाभेः प्रभा सरसिजोदरसोदरायाः॥ १०॥

उपेन्द्रवज्रा।

मुधैव नक्तं परिकल्प्य गन्तुं मृषैव रोषा दुपजल्पतो मे।
उदश्रुवंचन्नयना नताङ्गी गिरं न कां का मुररीचकार॥ ११॥

पुष्पिताग्रा।

तदवधि कुशली पुराणशास्त्रस्मृतिशतचारुविचारजो विवेकः।
यदवधि न पदं दधाति चित्ते हरिण किशोरदृशोदृशो विलासः॥१२॥

सवैया।

भोर समै गुरु लोगकि सासुहि जाय प्रिया जब बन्दना कीनी।
वे सब, "पुत्रवती तुम होहु सदा" यह सुन्दर आसिषा दीनी॥
सो सुनि पूरन आदरतैं हरषाय हिये भरि आनंद लीनी।
ठाढ़ेहुते ढिग प्रीतमको सुकटाच्छनतैं लख्यो प्रेममैं भीनी॥ ६॥

रोला।

मोहि देखतही प्रेमभाव प्रगव्यो उर ताको।
गुरुजनको भयमानि तऊ गोप्यो हियवाको॥
कछु कछु विकसित कमल सरिस सुन्दर जे तूलत।
मृगनैनीके नयन हाय इकपल नहिं भूलत॥ ७॥

सवैया।

बदरी फलकी छवि चोरि लियो प्रथमैं पुनि आमलकी छवि लीनी।
फल आमऽरुदाडिम सुन्दरजे क्रमसो बढ़िकैदुति ताहुको छीनी॥
नितही बढतै बढ़तै तुमरै कुच ये सुप्रिये! मम प्रेममैं भीनी।
करि शावककी युगकुम्भहुको अब चोरिबो चाहत सोभ नवीनी॥ ८॥

दोहा।

तुव कपोल सुन्दरि! प्रिये! उत्तर दिशा समान।
जामहं श्री वै श्रवणको लसत अलक मधि आन॥ ९॥

सवैया।

नीवी भईहुती ढीली कछू रति केलि कला मधि जो निशिमांही।
प्रात समैको प्रकास निहारि उठ्यो चह सेजतै बांधिकै ताही॥
पंकजके हियके सम गौर विराजत जाहिको देह सदाही।
ताहिके नाभिकी वा छवि नेकहु मो मनतें उतरै कबू नांही॥१०॥

रोला।

झूठहि रचिकै रोष कपटकरि हम निसिमांही।
कह्यो प्रिये! परदेस अबै हम तुरतहि जाहीं॥
सुनि उमड्यो जलधार चपल नैननतैं ता छन।
काह;काह नहि कह्यो दीन है प्यारी बातन॥ ११॥

स्मृति पुराण अरु शास्त्र सकलते उपज्यो उत्तम।
रहत तबैलौं हृदयमांझ सबको विवेक सम॥
जबलौं नहि हियबीच मनुजके आवत अनुछिन।
मृगशिशुनैनी प्रिया नयनको मृदु विलास गन॥ १२॥

रथोद्धता।

आगतः पति रितीरितं जनैः शृखती चकित मेत्य देहलीम्।
कौमुदीव शिशिरीकरिष्यति लोचने मम कदा मृगेक्षणा ॥ १३ ॥

औपच्छंदसिक।

अवधौ दिवसावसानकाले भवनद्वारि विलोचने दधाना।
अवलोक्य समागतं तदा मा मथ रामा विकसन्मुखी बभूव ॥ १४ ॥

शालिनी।

वक्षोजाग्रं पाणिना मृष्य दूरं यातस्य द्रा गानमाजं प्रियस्य।
शोणाग्राभ्यां भामिनी लोचनाभ्यां जोषं जोषं जोष मेवा वतस्थे ॥१५॥

औपच्छंदसिक।

गुरुभिः परिवेष्टितापि गंडस्थलकंडूयनचारुकैतवेन।
दरदर्शितहेमबाहुनाला मयि बाला नयनाञ्चलं चकार। १६ ॥

गुरुमध्यगता मया नताङ्गी निहता नीरजकोरकेण मन्दम्।
दरकुण्डलताण्डवंनतभ्रूलतिकं मा मवलोक्याघूर्णितासीत् ॥१७॥

विनये नयनारुणप्रसारः प्रणती हन्त निरन्तराश्रुधाराः।
अपि जीवितसंशयः प्रयाणे नहि जाने हरिणाक्षि केन तुष्येः ॥१८

रोला ।

"आयो तुव पति अबै" बचन अस कह्यो सबै जन ।
सुनतै बेगहि आय देहली मांह चकित मन ॥
सो मृगनैनी प्रिया कबै नखतेस (१) कलासम ।
करिहै अतिही शीतल प्यासे युगल नयन मम ॥ १३ ॥

मम आवनकी अवधि जानिकै सांझ समैमंह ।
भवन द्वारमैं आय चाहि निरखन लागी तंह ॥
पुनि आयो मोहि देखि तबै मम प्राणपियारी ।
हरखि कियो मम मुदित बिकासित मुख उजियारी ॥१४॥

दोहा ।

उरज परसि करतै सुप्रिय चल्यो जबै कछु दूर ।
अरुन नयनतैं निरखि तिय भई मौन भरपूर ॥ १५ ॥

रोला ।

बैठी गुरु जनमाहि तऊ करि व्याज तिहो छन ।
मृदु कपोल युग बिमल लगी करतैं कछु परसन ॥
पुनि दिखायकै मोहि नेक सुवरन भुजनाला ।
देख्यो मोकंह वंक नयनतैं सुन्दरि बाला ॥ १६ ॥

बैठी गुरु जनमध्य नई कछु यौवन भारन ।
हौं तिहिं कमल कलीन लग्यो जब धीरे मारन ॥
मन्द मन्द तब प्रिया करन कुण्डल नचायकै ।
कियो मोहि लखि नेक रोस भौंहैं घुमायकै ॥ १७ ॥

भरति लालिमा नयनमांझ कछु विनय करनपै ।
अविरल आंसू धार बहावति गिरे चरनपै ॥
चलन चहौं जब तबै चहति निज प्रान निकारन ।
न हि जानौ तुव प्रिये ! तोष ह्वै है केहि कारन ॥ १८ ॥

---

(१) चन्द्र ।

हरिणी।

अकरुण ! मृषा वाचं ब्रूषे विमुञ्च ममाञ्चलं।
तव परिचितः स्नेहः सम्यङ् मयी त्यभिधायिनीम् ॥
अविरलगलद्वाष्पां तन्वीं निरस्त-विभूषणां।
क इव भवतीं भद्रे ! निद्रे ! विना विनिवेदयेत् ॥ १९ ॥

उपजाति।

तीरे तरुण्या वदनं सहासं नीरे सरोज ञ्च मिलद्विकासम्।
आलाक्य धाव त्युभयत्र मुग्धा मरन्दलुब्धालिकिशोरमाला ॥२०॥

रथोद्धता।

वीक्ष्य वक्षसि विपक्षकामिनी हारलक्ष्म दयितस्य भामिनी।
अंशदेशविनिवेशितां क्षणा दचकर्ष निजवाहुवल्लरीम् ॥ २१ ॥

उपेन्द्रवज्रा।

दरानमत्कन्धरवन्ध मीष न्निमीलितस्निग्धविलोचनाब्जम्।
अनल्पनिश्वासभरालसाङ्गं स्मरामि सङ्गं चिर मङ्गनायाः ॥ २२ ॥

शालिनी

रोषावेशा न्निर्गतं यामयुग्मा देत्यद्वारं काञ्चिदाख्यां रणन्तं।
मा माञ्जालैवा ययौ कातराक्षी मन्दं मन्दं मन्दिरा दिन्दिरेव ॥२३॥

औपच्छसिकं।

हृदये क्षतशैवलानुसक्ता मुहु रङ्गानि यत स्ततः क्षिपन्ती।
प्रियनामपरे मुखे सखीना मतिदीना मिय मादधाति दृष्टिम् ॥२४॥

इत एव् निजालयं गतायाः वनितायाया गुरुभिः समाहूतायाः।
परिवर्तितकन्धरं नतभ्रु स्मयमानं वदनाम्बुजं स्मरामि ॥ २५ ॥

रोला।

बोलत झूठो बैन तजहु निर्दय ! अञ्चल मम।
जस मोपै तुव अहै प्रीतिसो जान गई हम ॥
इमि कहि रोवति तजति भूषननि छग अंगनको।
तिथको अस छवि नीद ! दिखावैरी तुम बिनको ॥ १९ ॥

दोहा।

तट मंह तियमुख हसत अरु खिले जलज जलमांहि।
लखि ठगि धावत दुहु दिसा शिशु अलिगन मधुचाहि ॥ २० ॥

पिय उरमैं तिय सौतिकी देखि हारकी छाप।
छिन गरपै रखि भुजलता खैंचि लई झट आप ॥ २१ ॥

खिले कमल सम सरस दृग स्याम अलस भरि अंग।
कछुक झुक्यो गर तीयको सुमिरतहौं वह संग ॥ २२ ॥

रोला।

गयो रूठि करि कोप आय पुनि द्वैक जाममैं।
लग्यो पुकारन द्वार खड़ो लै तीय नाम मैं ॥
सुन्यो बैन अरु मोहि जानि भरि दृगनि उदासी।
निज मन्दिरतैं मन्द मन्द आई कमलासी ॥ २३ ॥

दोहा।

करि सेवारको लेप उर इत उत फेंकति गात।
सखि मुखतैं पिय नाम सुनि बिलखि कियो दृग पात ॥ २४ ॥

इतहीतैं निज घर गई तिय जब गुरु जन मांहि।
फिरो कण्ठ भ्रकुटी नमित बिहंसित मुख न भुलांहि ॥ २५ ॥

मालिनी।

कथय कथमिवाशा जायतां जीविते मे।
मलयभुजगवांता वान्ति वाताः कृतान्ताः॥
अयमपि खलु गुञ्जन् मञ्जु माकन्दमौलौ।
चुलुकयति मदीयां चेतना च्चञ्चरीकः॥ २६॥

उपजाति।

निरुध्य यान्तीं तरसा कपोतीं कूजत्कपोतस्य पुरो दधाने।
मयि स्मितार्द्रं वदनारविन्दं सा मन्दमन्दं नमयाम्बभूव॥ २७॥

प्रबोधिता।

तिमिरं हरन्ति हरितां पुरस्थिताः
स्थिरयन्ति तापमथ तापशालिनाम्।
वदनत्विष स्तव चकोरलोचने!
परिमुद्रयन्ति सरसी रुहश्रियः॥ २८॥

मालिनी।

कुचकलशनखान्त मांसनीनं नखाङ्कं।
सपुलकतनु मन्दं मंद मालोकमाना॥
विनिहितवदनं मां वीच्य वाला गवाचे।
चकिततनु नताङ्गी सद्म सद्यो विवेश॥ २९॥

उपजाति।

विधाय सा मद्वदनानुकूलं कपोलमूलं हृदये शयाना।
तन्वी तदानी मितुलां वलारिः साम्राज्यलक्ष्मी मधरीचकार॥ ३०॥

औपच्छन्दसिक।

मुहु रर्थितया द्य निद्रया मे वत यामे चरमे निवेदितायाः।
चिबुकं सुदृशो स्पृशामि यावन् मयि ताव स्मिहिरोपि निर्दयोऽभूत॥ ३१

रोला।

कहु कैसेके आस होय मम जीवन मैं अब।
मलय भुजग मुख कढ्यो काल सम वहत वायु जब॥
पुनि याहू मृदु गुंजि मधुप आमनको डारन।
हाय हमारि अवै होयको चहत निकारन॥ २६॥

सुन्दर विहग कपोत रमण हित लाग्यो कुहुकन।
ताहि सामुहे चली कपोती वेगिहि तिहि छन॥
रोकि ताहि हम विहंसि वदन विकसित कीन्हों जब।
हरखि पियारी मोहि रमायो मंद मंद तब॥ २७॥

चौपाई।

हरत चहूंदिसको अंधियारी। नासत ताप दुखिनको भारी॥
पुनि ढांपत छबिहू कमलनको। दुति चकोरनयनी सुवदनको॥२८॥

रोला।

युगल कमल सम कुचन मध्य मम कियो नखच्छत।
पुलकित करति शरीर मन्द मन्दहि तिहि देखत॥
पुनि लखि वाला मोहि बैठि पेखत गोखनमें।
चकित होय झुकि सकुचि वेगिहो गई भवनमें॥ २९॥

दोहा।

करि कपोल मम मुख निकट सोई जब उर लागि।
तब सुरपतिके सुखहुको तुच्छ करी भय त्यागि॥ ३०॥

चौपाई।

प्यारीको करि विनय सुनायो। जाम रहत कछु रैन गवांयो॥
ठाढ़ो परसन लाग्यो जबही। निर्दय उदित भयो रवि तबही॥३१

मालिनी।

श्रुतिशत मपि भूयः शीलितं भारतंवा।
विरचयति तथा नो हन्त सन्तापशान्तिम्॥
अयि सपदि यथायं केलि विश्रान्त कान्ता।
वदनकमलनालात् कान्तिसान्द्रोनकारः॥ ३२॥

औपच्छन्दसिकं।

लवलीं तव लीलया कपोले कवलीकुर्वति कोमलत्विषा।
परिपाण्डुरपुण्डरीकखण्डे परिपेतुः परितो महाधयः॥ ३३॥

रथोद्धता।

यौवनोद्गमनितान्तशङ्किताः शीलशौर्यबलकान्तिलोभिताः।
संकुचन्ति विकसन्ति राघवे जानकीनयननीरजश्रियः॥ ३४॥

औपच्छसिकं।

अधिरोप्य हरस्य हन्त चापं परितापं प्रशमय्य बान्धवानाम्।
परिणेष्यति वा न वा युवायं निरधारि मिथिलाधिनाथ पुत्रीम्॥३५॥

गीति।

भुजपञ्जरे गृहीता नवपरिणीता वरेण रहसि वधूः।
तत्कालजालपतिता बालकुरङ्गीव वेपते नितराम्॥ ३६॥

आर्या।

उपनिषदः परिपीता गीता च हन्त मतिपथंनीता।
तदपि न हा विधुवदना मानससदनाद् बहि र्याति॥ ३७॥

गीति।

अकरुणहृदय! प्रियतम! मुञ्चामि त्वा मितः परं नाहम्।
इत्यालपति करांबुज मादाया लीजनस्य विकला सा॥ ३८॥

रोला।

शत वेदहुकी पाठ बांचिवो भारतको गिनि।
नहिं नासत सन्ताप हीयको तैसो वह पुनि॥
जैसो काढि रति केलि थकित प्यारीके मुखतें।
हरत तुरत दुख बचन "नाहि" यह मधु पीयुखतें॥२२॥

दोहा।

तुव कपोल मृदु सोभतें लवलीको किय नीच।
पखो विमल सित कमलके महा आधि हियवीच॥ २३॥

रोला।

यौवन आगम जानि रहति शंकित अतिही नित।
शील शौर्य बल कांति समुझि पुनि होवै लोभित॥
श्रीराघवको पेखि संकोचति अरु बिकसति है।
श्रीसीताकेह नयन कमल दुतिकी यह गति है॥ २४॥

दोहा।

भज्जि ईश धनु समन करि बन्धुनको दुख दाह।
राम जनक तनया सहित निहचय करिहै व्याह॥ २५॥

नवल तियहिं ब्रर जब गह्यो भुज पञ्जरमे चाहि।
अति कांपति जिमि सिसु मृगी परी जालके मांहि॥ २६॥

पढ्यो सकल वेदान्त पुनि-गीता किय मनमांहि।
हाय चन्द्रवदनी तऊ निकरति हिय तेंनांहि॥ २७॥

तोहि न अवतें छोडिहौं निर्दय! प्रियतम! नाह॥
भ्रमि बोलति वह बिकल तिय धरि आलीकी बांह॥ २८॥

गीति।

लोभा द्वराटिकानां विक्रेतुं तक्र मविरत मटन्त्या।
लब्धो गोपकिशोर्या मध्ये रथ्यं महेन्द्रनीलमणिः॥ ३९॥

रूपारुचिं निरसितुं रसयन्त्या हरिमुखस्य लावण्यम्।
सुदृशः शिव! शिव! सकले जाता सकलैरेव जगत्यरुचिः॥४०॥

किं जल्पसि मुग्धतया हन्त ममाङ्गं सुवर्णमिति।
तप्यति पतति हुताशे तदा हताशे! तुलां तवा रोहेत्॥४१॥

आर्या।

औत्सुक्यात् परिमिलतां त्रपया सङ्कोच मञ्चतां च मुहुः।
नवसङ्गमयो र्यूनो र्नयनानां मुत्सवो जयति॥ ४२॥

गीति।

गरिमाण मर्पयित्वा लघिमानं कुचतटात् कुरङ्गदृशाम्।
स्वीकुर्वते नम स्तेभ्यो यूनां धैर्याय निर्विवेकाय॥ ४३॥

आर्या।

अञ्चति वयसि प्रथमे समुदञ्चति तरुणिम्नि तदा सुदृशः।
दधति स्म मधुरिमाणं वाचां गतयश्च विभ्रमाश्च भृशम्॥ ४४॥

अनुष्टुप्।

निःसीमशोभासौभाग्यं नताङ्ग्या नयनद्वयम्।
अन्योन्यालोकनानन्द विरहा दिव चञ्चलम्॥ ४५॥

गुरुमध्ये हरिणाक्षी मार्त्तिकशकलै र्निहन्तुकामं माम्।
रदयन्त्रितरसनाग्रं तरलितनयनं निवारयाञ्चक्रे॥ ४६॥

दोहा।

छांड़ि बेंचिवेको फिरति कौडिन ह्वी के काज।
पायो गोपी गैल बिच मह्वा नील मनि आज ॥ ३८ ॥

रूप अरुचिके त्यागह्वित चाख्यो हरिसुख लोन।
प्रेम कुपित तियको लगत सारो जगत अलोन ॥ ४० ॥

हेम वरन मम गातहै अस किमि कहति अजान ॥
वह तपिहै जब अनलमंह ह्वैहै तोहि समान ॥ ४१ ॥

प्रथम चाहतें मिलत पुनि लज्जातें सकुचात।
दंपतिके नव संगमें हग अनन्द अधिकात ॥ ४२ ॥

मृगनैनीके कुचनि दै गुरुता लघुता लीन्ह।
अस अविवेकी धीरजहिं नमस्कार हम कीन्ह ॥ ४३ ॥

तियकी लरिकाई गई आयो यौवन भाव।
अति छवि धार्‍यो तव वचन गति अरु विभ्रम हाव ॥ ४४ ॥

लहि असीम सोभा धनहिं युवतीके युग नैन।
दर्सन सुख लगि परसपर चंचल रहत अचैन ॥ ४५ ॥

सास ननद ढिग रही बैठि मृगनैनी तिय जंह।
मारि कांकरी ताहि चहौं हम सैन करन तंह।
तब दन्तनतें दाबि जीह पुनि नैन नचायो।
मोहि निवारन हेत प्रिया अस भाव दिखायो ॥ ४६ ॥

गीति

नयनाञ्चलावमर्शं या न कदाचित् पुराकथं सेहे ।
आलिङ्गितापि जोषं तस्थौ सागन्तुकेन दयितेन ॥ ४७ ॥

मानपराङ्मुखवदना पि सा प्रिया शयानैव करकमले ।
उद्वेल्लद्भुजमलस ग्रीवाबन्धं लपोल माधत्ते ॥ ४८ ॥

आर्य्या ।

लोचनफुल्लाम्भोजद्वयलोभान्दोलितैकमना: शुभे ! ।
कस्तूरीतिलकमिषा दय मलिकेलि स्तवोल्लसति ॥ ४९ ॥

अधिरजनि प्रियसविधे कथमपि संवेशिता बलाद्गुरुभि: ।
किमि् भवितेति नु शङ्का पङ्कजनयना परं स्पृशति ॥ ५० ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

चिन्तामीलितमानसो मनसिज: सख्यो विहीनप्रभा: ।
प्राणेश: प्रणयाकुल: पुन रसा वांस्तां समस्ता कथा ॥
एत त्वां प्रतिवोधयामि मम चेदुक्तिं हितां मन्यसे ।
मुग्धे ! मा कुरु मान मानन मिदं राकापतिर्जेष्यति ॥ ५१ ॥

शिखरिनी ।

अलंकर्तुं कर्णौ भृश मनुभवन्त्या नवरुजां ।
सशीत्कारं तिर्यग्वलितवदनाया मृगदृश: ॥
कराब्जव्यापारा नतिसुकृतिसारान् रसयतो ।
जनु: सर्वश्लाघ्यं जयति ललितोत्तंस ! भवत: ॥ ५२ ॥

दोहा।

जो तिय परजनको कबूँ सह्यो न चखको कोन।
वह्ी अपरिचित पीयके उर लिपटी ह्वै मौन ॥ ४७ ॥

यदपि रूठि मोरति बदन तउ अलसानी तीय।
सोवति मम कर कमल पै धरि कपोल कमनीय ॥ ४८ ॥

प्यारी ! तेरे भाल पै मृगमद तिलक सुहाय।
जनु दृग पङ्कज लोभ बस बैठ्यो मधुकर आय ॥ ४९ ॥

सारा ननद गहि लैगई सोवनको पिय पास।
का ? ह्वै है इमि सोचि तिय करति अधिक उर त्रास ॥५०

कवित्त।

चिंतातैं मलीन मन ह्वैगो पञ्चबानजूको
आली गनङ्गको आज बदन भयो है मन्द।
प्राणपति विकल भये हैं तुव प्रेमहेत
जानदेहु ऐसे सब बातनको छन्दबन्द ॥
मेरे मृदुबैननको जो तू हित जानती हो
तो मैं कहौं सांची यह साखी करि विप्रचन्द।
प्यारी जनि मान ठान मानिलै हमारी बानि
ना तो तुव आननको जीतिहै अमन्द चन्द ॥ ५१ ॥

रोला।

स्रवन संवारन समय वेदना भई नेक जब।
सीसी करि कछु बदन कंपायो मृगनैनी तब ॥
बड़े पुन्यसो परसि ताहि निज कर कमलन तैं
करन फूलरे ! कियो जन्म अपनो धनधन तैं ॥ ५२ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

आयातैव निशा निशापतिकरैः कीर्णं दिशा मन्तरम् ।
भामिन्यो भवनेषु भूषणगणैरङ्गानि संस्कुर्वते ॥
मुग्धे ! मान मपाकरोषि न मना गद्यापि रोषेण ते ।
हाहावालमृणालतो प्यतितरां तन्वी तनु स्ताम्यति ॥५३॥

वाच्यं माङ्गलिकीं प्रयाणसमये जल्प त्यनल्पं जने ।
केलीमन्दिरमारुतायनमुखे विन्यस्तवक्त्राम्बुजा ॥
नि :श्वासग्लपिताधरं परिपतद्वास्पार्द्रवक्षोरुहा ।
बाला लोलविलोचना शिवशिव प्राणेश मालोकते ॥ ५४ ॥

दारिद्र्यं भजते कलानिधि रयं राका धुना म्लायति ।
स्वैरं कैरवकाननेषु परितो मालिन्य मुन्मीलति ॥
धावन्ते हरिदन्तराणि सुहृदां वृन्दं स मानन्दति ।
त्व श्चे दञ्चसि काञ्चनाङ्गि ! वदनाम्भोजे विकाशश्रियम् ॥५५

पश्चोरद्रुभुजंगपुङ्गवमुखाद् याता द्रवा तापिनी ।
वाता वान्ति दहन्ति लोचन ममी ताम्रा रसालद्रुमाः ॥
एते हन्त किरन्ति कूजित मयं हालाहलं कोकिलाः ।
बाला बालमृणालकोमलतनुः प्राणान् कथं रक्षतु ॥ ५६ ॥

आयातैव निशा मनो मृगदृशा मुन्निद्र मातन्वती ।
मानो मे कथमेव सम्प्रति निरातङ्कं हृदि स्थास्यति ॥
ऊहीयो हृ मिमं सरोज नयना यावद्विधत्ते त्वरां ।
तावत्कामनृपातपत्रसुषमं बिम्बं बभासे विधोः ॥ ५७ ॥

कवित्त।

आवतही यामिनीके दसहू दिसानमध्य
राकापति किरन प्रकास दरसात है।
"विप्रचंद" बैठि निजभौननमें भामिनिहू
भूषनतें करत सिंगार अब दात है॥
काहे ना तजत मान ऐसहूसमैमें वीर!
बावरी भई तू हितू कोऊ ना दिखात है।
हाय कोपहीसो आज नूतन मृणालहूतें
कोमल तिहारो गात जात कुम्हिलात है॥ ५३॥

सवैया।

जानसमै जब उत्तम आसिष दैन लगी गुरु लोग विसेखन।
केलिके भौन झरोखन बैठि लगी तहं झांकन चाहके तेखन॥
सूखे उसासनतें अधरा अंसुवानतें भींग्यो उरोज असेखन।
चञ्चल कै चख बाल बधू निज प्राणपतीको लगी वह देखन॥५४॥

होत दरिद्र कलानिधि या पुनि पूनम रैन मलीन दिखै तब।
कैरवकी सब काननमें दिखरात प्रसूनहूँ कुण्ठित ह्वै अब॥
होत प्रकास चहू दिसिमें अरु पावत मोद सखी अपनी सब।
हेमलतासी प्रिये तुम सुन्दर आनन कञ्ज विकासतीहो जब॥५५॥

चन्दन काननके अहि फूँकसे तापत बात बहै दिसि सारे।
नूतन लाल सुपल्लव सोभित गाछ रसालको नैनन जारे॥
ये सब कोकिल बोलत बैन मनो बरसावैं हलाहल भारे।
बालमृणालसे कोमल गात सुबाल अबै कस प्राणको धारे॥ ५६॥

यह रैन बसन्तकी आवतही सब नारिनके मनमें मद दीनो।
अबतो कस मान निसङ्क बनो रहि है मम आय हिये महं भौनो॥
चलनो चहिये पिय पासमें वेगहि पङ्कजनैनी विचार यौं कीनो।
तबलौं नृपकामके छत्रसे सुन्दर चन्द्रको बिम्ब उदै नभ लीनो॥५७

पृथ्वी।

प्रभातसमयप्रभां प्रणयनिह्नुवाना रसा
दमुष्य निजपाणिना दृशममीलयल्लीलया ॥
अयन्तु खलु पद्मिनी परिमला लिपाटच्चरो
रवेरुदयमध्यगा दधिकचारु तौ मारुतिः ॥ ५८ ॥

शिखरिनी।

विदूरा दाश्चर्यस्तिमित मथ किञ्चित् परिचया
दुदञ्च चाञ्चल्यं तदनुपरि विस्फारितरुचि।
गुरूणां सङ्घाते सपदि मयि याते समजनि
त्रपाघूर्णत्तारं नयन मिह सारङ्गजदृशः ॥ ५९ ॥

कपोला वुन्मीलत्पुलकनिकुरम्बे मयि मनाङ्
मृश त्यन्तःस्मेरस्तवकितमुखाम्भोरुहरुचेः ॥
कथङ्कारं शक्याः परिगदितु मिन्दीवरदृशो
लसद्व्याजानिर्यद्रसभरसपत्ना भणितयः ॥ ६० ॥

शार्दूलविक्रीडित।

राजानं जनयाम्बभूव सहसा जैवातृक! त्वा न्तु यः।
सोऽयं कुण्ठितसर्वशक्तिनिकरो जातो जरार्त्तो विधिः ॥
सम्प्र त्युन्मदखञ्जरीटनयनावक्त्राय नित्यश्रियै।
दाता राज्य मखण्ड मस्य जगतो धाता नवो मन्मथः ॥६१॥

मन्दाक्रान्ता।

आविर्भूता यदवधि मधुस्यन्दिनी नन्दसूनोः।
कान्तिः काचि न्निखिलनयनाकर्षणे कार्मणज्ञा ॥
श्वासो दीर्घ स्तदवधि मुखे पाण्डिमा गण्डमूले।
शून्यावृत्तिः कुलमृगदृशां चेतसि प्रादु रासीत् ॥ ६२ ॥

रोला।

प्रात समैकी प्रभा छिपावति बडी प्रीतितैं।
निज करतैं दृग मूदि पीयको तिय सुरीतितैं॥
तब यह नायक मधुप पद्मिनी परिमल चोरा।
त्रिविध प्रभातिक सुखद पवनतैं जाग्यो भोरा॥ ५८॥

देखि दूरतैं नयन थोर भो अति अचरज संह।
भो चञ्चल पहचानि भयो पुनि बहु विकसित वह॥
गयो जबै हम सास ननद बैठी जिहि ठामहिं।
लाज भ्रमित दृग जोतिभई अतिही तिहिं बामहिं॥५९॥

हम रोमंचित होय नेक परस्यो कपोल जब।
कछु मुसुकानी प्रिया खिली मुखपङ्कज द्युति तब॥
बरनि सकौं किमि? नील नलिन नैनीकी बोलनि।
मधुर दाख फल सुरस सरिस मधु अरु अनमोलनि॥६०॥

कवित्त।

भाषत है "विप्रचन्द" ना विधि विचार करि
ऐरे चन्द तोकौं जो बनायो द्विजराजराज।
सोई अब हीन होय बुद्धि बल पौरुषतैं
बूढ़ो भयो जर्जर सकैंना करि कोऊ काज॥
मदमत्तखञ्जरीटनैनीको मुखारविंद
रैन दिन जामैं रहै अमित कटाक्ष छाज।
ताहीको नवीन यह मनमथ विरञ्चि वीर
जगको अखण्डराज दैवैगो जरूर आज॥ ६१॥

सवैया।

है प्रगटी जबतैं नंदलालकी स्वच्छ सुधा बरसावनवारी।
या छवि री सबके दृगमोहन हेतु सुजादुकी जाननवारी॥
दीरघ लेत उसास मुखै भरि पीत कपोल भयो पुनि भारी।
हा तबतैं भयो सूल हियो अति ऐसी भई सबही कुलनारी॥६२॥

शिखरिणी।

प्रभङ्गे गोपानां गुरुषु महिमानं यदुप ते।
कृपाकर्णं खिद्यत् पुलकितकपोला कुलवधूः॥
विषज्वालाजालं धगिति वमतःपन्नगपतेः।
फणायामाश्चर्यं स्वगयतितरां ताण्डवविधिम् ॥ ६३ ॥

शार्दूलविक्रीडित।

कैशोरे वयसि क्रमेण तनुता मायाति तन्व्या स्तना
वागामिन्यखिलेश्वरे रतिपतौ तत्काल मस्या ऽज्ञया॥
आस्ये पूर्णशशाङ्कता नयनयो स्तादात्म्य मम्भोरुहां,
किञ्चासी दस्तस्य भेदविगमः साचिस्मिते तात्त्विकः॥ ६४ ॥

आर्या।

शयिता शैवलशयने सुषमाशेषा नवेन्दुलेखेव।
प्रिय मागत मपि सविधे सत्कुरुते वीक्षणैरेव॥ ६५ ॥

उद्गीति।

विरहेण विकलहृदया विलपन्ती दयितदयितेति।
प्रिय मागतं मपि सविधे परिचयहीनेव वीक्षते बाला॥६६

औपच्छन्दसिकं।

अधरद्युति रस्तपल्लवा मुखशोभा शशिकान्तिलङ्घनी।
तनु रप्रतिमा च सुभ्रुवो न विधे रस्यकृतिं विवक्षति॥ ६७ ॥

शार्दूलविक्रीडित।

व्यत्यस्तं नयति क्षणं क्षण महो मौनं समालम्बते।
सर्वस्मिन् विदधाति किञ्च विषये दृष्टं निरालम्बताम्॥
श्वासं दीर्घं मुरीकरोति न मना गंगेषु धत्ते धृतिं।
वैदेहीविरहव्यथाविकलितो हा हन्त लंकेश्वरः॥ ६८ ॥

रोला।

गुरु जननिमें सब गोप कहे वनकी सब बातनि।
विष ज्वालाको बमत जबै अहिपति कालीफनि॥
ताफनपै किय नांच कान्ह यह कथा श्रवनकरि।
पुलकित मुख कुलवधू तज्यो गौरव अचरज भरि॥६३॥

सवैया।

कामिनिके तनमैं जबतें लरिकाई कछू लघता गहिलीनी।
लोकपती रतिनाथकी आयसु पाय सबै किय बात नवीनी॥
पूरन चन्द छटा मुखमै भई नैनमै पङ्कजकी दुति भीनी।
त्यों तिरछी मुसुकानहूमै अतिही समता सुपियूषहू कीनी॥६४

दोहा।

सोहति नव विधु रेख सम सोई सेज सेवार।
ढिग आगत पतिको कियो लखिहीके सतकार॥ ६५॥

पिय पिय कहि विलपति अधिक ह्वैके विरह बिहाल।
ढिग आये पतिको लखति बिन चीन्हे सम बाल॥ ६६॥

पल्लवको जीत्यो अधर जित्यो विधुहि मुख आभ।
नहि विधिको वनयो अहै कहन चहत तनु आभ॥ ६७॥

रोला।

विकल होत छिनमाहं मौन पुनि छिनमंह धारत।
सकल पदारथ माहं एक टक होय निहारत॥
धरत न निज तन धीर सांसहू लेत दीह अति।
सिया विरह बहु पीर विकल ह्वै कै लङ्कापति॥ ६८॥

गीति ।

उदितं मण्डल मिन्दो रुदितं सद्यो वियोगिवर्गेण ।
मुदितं च सकलललनाचूडामणिशासनेन मदनेन ॥६८॥

उद्गीति ।

प्रादुर्भवति पयोदे कज्जलमलिनं बभूव नभः ।
रक्तं च पथिकहृदयं कपोलपाली मृगदृशः पाण्डुः ॥७०॥

अनुष्टुप् ।

इद मप्रतिमंपश्य सरः सरसिजै र्वृतम् ।
सखे मा जल्प नारीणां नयनानि दहन्ति माम् ॥ ७१ ॥

उद्गीति ।

मुञ्चसि नाद्यापि रुषं भामिनि ! मुदिरालि रुदियाय ।
इति सुदृशः प्रियवचनै रपायि नयनाब्जकोणशोणरुचिः ॥ ७२ ॥

वसन्त तिलक ।

आलोक्य सुन्दरि ! मुखं तव मन्दहासं ।
नन्द न्त्यमन्द मरविन्दधिया मिलिन्दाः ॥
किञ्चा सिताक्षि । मृगलाञ्छनसंभ्रमेण ।
चंचूपुटं चटुलयन्ति चिरं चकोराः ॥ ७३ ॥

शिखरिणी ।

स्मितं नैतत् किन्तु प्रकृतिरमणीयं विकसितं ।
मुखं ब्रूते को वा कुसुम मिद मुद्य त्परिमलम् ॥
स्तनद्वन्द्वं मिथ्याकनकनिभ मेतत् फलयुगं ।
लतासेयं रम्या भ्रमरकुलनम्या न रमणी ॥ ७४ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

संग्रामाङ्गन संमुखाहतकिय द्विश्वम्भराधीश्वर
व्यादीर्णीकृतमध्यमाङ्ग विवरोन्मीलन्नभोनीलिमा ॥
अङ्गारप्रखरैः करैः कवलय न्नेतन्मही मण्डलं ।
मार्तण्डो य मुदेति केन पशुना लोके शशाङ्कीकृतः ॥७५॥

दोहा।

उदित चन्द्र मण्डल भयो रुदित वियोगी वृन्द।
मुदित मदन भो सब तियहिं दैके सौख अमन्द॥ ६९॥

कज्जल मलिन अकास भो घन छायो जब आन।
पथिक हृदय अतिरक्त भो तिय कपोल पियरान॥ ७०॥

सखे! सरोजनतैं भयो यह अनुपम सर देख।
न कछु मीत! नारीनयन दाहत मोहि विसेख॥ ७१॥

तजसि न रुष भामिनि! अजहुं? घन छायो नभ आय।
सुनि प्रिय बचनहिं तीय दृग लाली गई नसाय॥ ७२॥

रोला।

मन्द हास युत वदन सुन्दरी! तेरो देखैं।
कमल जानि अलियूथ अनन्दित होत विसेखैं॥
नयन नीलिमा पेखि कलंकित विधर्क भ्रमपरि।
नित चकोरङ्ग तृषित लखत है ऊंचो सुखकरि॥ ७३॥

स्मित न अहै यह, किन्तु सुभाषित छटा प्रकासित।
सुख न अहै यह, किन्तु सुवासित कुसुम विकासित॥
कुच न अहै यह, किन्तु कनक सम युग फल राजत।
तिय न अहै यह, किन्तु सुघर मृदुलता विराजत॥७४॥

समर मध्य लरि मरे सामुहे कितिक महीपति।
गये वेधि दिव तिन्हीं परत लखि नभ स्याही अति।
तप्त अनल सम किरन जालतैं भूमिहिं तापत।
उदित भानु, इहि कौन कहत मूरख तारापत॥ ७५॥

वसन्ततिलका ।

श्यामं सितं च सुदृशो न दृशोः स्वरूपं ।
किन्तु स्फुटं गरल मेत दथा मृत ञ्च ॥
नोचेत् कथं निपतना दनयो स्तदैव ।
मोहं मुदञ्च नितरां दधते युवानः ॥ ७६ ॥

अनुष्टुप् ।

अलि र्मृगो वा नेत्रं वा यत्र किञ्चि द्व भासते ।
अरविन्दं मृगाङ्को वा मुखं वेदं मृगीदृशः ॥ ७७ ॥

वियोगिनी ।

दयिते ! वदनत्विषां मिषा दयिते ऽमी विलसन्ति केशराः ।
अमी चा लकवेषधारिणो मकरन्दस्पृहयालवोऽलयः ॥ ७८ ॥

अनिशं नयनाभिरामया रमया संवदिनो मुखस्य ते ।
निशि निस्सरदिन्दिरं कथं तुलयामः कलयापि पङ्कजम् ॥ ७९ ॥

उपगीति ।

अंगैः सुकुमारतरैः सा कुसुमानां श्रियं हरति ।
विकलयति कुसुमवाणो वाणालीभि र्मम प्राणान् ॥ ८० ॥

आर्या ।

खिद्यति सा पथि यान्ती कोमलचरणा नितम्बभारेण ।
खिद्यामि हन्त परित स्तदुपविलोकनेन विकलो ऽहम् ॥ ८१ ॥

औपच्छन्दसिकं ।

मधुरागमनोन्मुखे सुरारा वसुधारातिश्रुतां व्रजाङ्गनानाम् ।
प्रलयज्वलनायते स्म राका भवनाकाश मजायता म्बुराशिः ॥ ८२

रोला।

श्याम सेत यह रङ्ग नहीं प्यारीके चखको।
किन्तु गरल अरु सुधा अहै तिहि सकत न लख वो ?
ना तो कैसे परत जाहिके तन पर ता छन !
मोहत अतिही और मुदित मन होत युवागन ॥ ७६ ॥

दोहा।

कै अलि कै मृग कै नयन नाही कछू जनात।
कै वारिज कै विधु कि मुख तिय कहं यह प्रगटात ॥७७॥

प्रिये ! वदन दुति व्याजतैं राजत कैसर एह।
अलक वेष धरि अलि यहै करत पराग सनेह ॥ ७८ ॥

रमा वदन भल कि तुव मुख इमि कहि सदा निहारि।
किमि ? दुति विन कछु कमलसन समता करु विचारि ॥७९॥

अति मृदु तनतैं कुसुमकी छवि प्यारी हरि लेत ॥
कुसुमवाणतैं प्राण मम मदन विकल करि देत ॥ ८० ॥

मृदु पग मग चलि होति वह विकल नितंबन भार।
विकल होत अति ही तबै हौंह ताहि निहार ॥ ८१ ॥

रोला।

श्रीमथुराके गमन हेत उद्यतभो हरि जब।
ब्रज बालनको निजहु प्राण भो भार सरिस तब ॥
पुनि राकातिथि (१) प्रलय अनल ज्वाला सम दाग्यो।
भवन अकासहु अति अथाह जलनिधि सम लाग्यो ॥८२॥

---

(१) पूर्णिमा।

शार्दूलविक्रीडित ।

केलीमन्दिर मागतस्य शनकै राली रपास्येङ्गितैः ।
सुप्तायाः सरुषः सरोरुहदृशः सम्भीवनं कुर्वतः ॥
जानन्त्या प्यनभिज्ञयेव कपटव्यामीलिताच्या सखि ।
श्रान्ता सो त्य भिधाय वक्षसि तया पाणि र्ममासञ्जितः ॥ ८३ ॥

वसन्त तिलक ।

मान्ययं माप गमनं सह शैशवेन ।
रक्तं सहैवमनसा धरविम्ब मासीत् ॥
किञ्चा भवत् मृगकिशोरदृशो नितम्बः ।
सर्वाधिको गुरुरयं स मनोरथेन ॥ ८४ ॥

गीति

श्वासो ऽनुमानवेद्यः शीता न्यङ्गानि निश्चला दृष्टिः ।
तस्याः सुभग कथेयं तिष्ठतु तावत् कथान्तरं कथय ॥८५॥

उपजाति ।

पाणौ कृतः पाणि रिलासुतायाः । सस्वेदकम्पो रघुनन्दनेन ॥
हिमाम्बुसङ्गानिलविह्वलस्य । प्रभातपद्मस्य वभार शोभाम् ॥८६॥

आर्या ।

अरुण मपि विद्रुमदण्डं मृदुलतरं चापि किसलयं वाले ! ।
अधरीकरोति नितरां तवा धरो मधुरिमातिशयात् ॥ ८७ ॥

औपच्छन्दसिक ।

नयने वहतो नु खञ्जनाना मिह नानाविध मञ्जने ! भयन्ते ।
मुख मेतु तुलां कथं सुशोभं सुदृशो भंगुरसम्पदो ऽम्बुजस्य ॥८८॥

वियोगिनी ।

सुदृशो जितरत्नमालया सुरतान्तश्रमविन्दुमालया ।
अलकेन च नीलकान्तिना विदधे कापि रुचिः परस्परम् ॥८९॥

रोला।

भेजि सेन करि सखिन कुपित मृगनैनि सोई जब।
जाय केलि गृह व्यजन पवन श्रम करन लगी तब॥
कपट मूंदि दृग मोहि जानिहै अजान सम।
सखी! धकौहौ बोलि यौंहि उर धरी बाहु मम॥८३॥

लरिकाईके सहित गमन अब मन्द भयो है।
अधर बिम्बहू मनहिं साथ पुनि राग लयो है॥
मृगशिशुनैनीकेर नितम्बहु युगल मनोहर।
बढ्यो मनोरथ साथ सबनतें अधिकहिं गुरुतर॥ ८४॥

दोहा।

अनुभव विदित उसास भो थिर दृग शीतल गात।
प्रिय! जिन कहु ताकी कथा कहहु दूसरी बात॥ ८५॥

सिय कर निज करतें गह्यो सेदकम्प भरि राम।
हिम ऽऋ पवन युत कमल सम भो प्रभात छवि धाम॥ ८६॥

लाल प्रवाल छरीन पुनि अति मृदु दलको बाल!।
किय नीचो निज सोभतें तेरे अधर रसाल॥ ८७॥

चौपाई।

खञ्जन गन बहु विधि भय धारत। प्यारी! तेरे नैन निहारत॥
निस दिन चंचल छवि पङ्कज अस। यह तुव मुख तासम ह्वैहै कस॥८८

दोहा।

मोती माल हि जीति तुव रति श्रम विन्दुन माल।
नील अलकतें परसपर किय छवि अकथ विशाल॥ ८९॥

औपच्छंदसिक।

परपूरुषदृष्टि जातबाधाहतिभीता, हृदयं प्रियस्य सीता।
अविशत् परकामिनी भुजंगीभयतः सत्वर मेव सोऽपि तस्याः॥८०

प्रहर्षिणी।

जम्बीरश्रिय मतिलंघ्य लीलयैव।
व्यानम्रीकृतकमनीयहेमकुम्भौ॥
नीलाम्भोरुहनयने! ऽधुना कुचौते।
स्पर्द्धेते किल कनकाचलेनसार्द्धम्॥८१॥

अनुष्टुप्।

अङ्गानि दत्वा हेमाङ्गि! प्राणान् क्रीणासि चे नृणाम्।
युक्त मेत त्रतु पुनः कोणं नयनयुग्मयोः॥ ८२॥

औपच्छंदसिक।

जितरत्नरुचां सदा रदानां सहवासेन परां मुदं ददानाम्।
विशदा दधरीकरोति नासा मधुना साहसशालि मौक्तिकं ते॥८३

उपजाति।

निभाल्य भूयो निजगौरिमाणं मा नाम मानं सहसैव यासीः।
गृहे गृहे पश्य तवा ङ्गवर्णा मुग्धे! सुवर्णावलयो लुठन्ति॥८४॥

वियोगिनी।

करिकुम्भतुला मुरोजयोः क्रियमाणां कविभि र्विशृङ्खलैः।
कथ मालि! शृणोषि सादरं विपरीतार्थविदो हि योषितः॥८५॥

वंशस्थविल।

तिरस्कृतो रोषवशात् परिष्वजन्
प्रियो मृगाक्ष्या शयितः पराङ्मुखः॥
किं दुःखितो ऽसा विति कान्दिशीकया
कदाचि दाचुम्ब्य चिराय सस्वजे॥ ८६॥

दोहा।

पर पूरुष दृग कुलिश डरि छिपो पीय हिय सीय।
रामहु पर तिय भुजगि भय तुरत छिप्यो सिय हीय ॥ ८० ॥

रोला।

जंवीरनकी सोभ कियो लीलातैं लंघन।
अतिनीचो करदियो मनोहर हैम सुकुंभन ॥
ऐ इन्दीवरनयनि ! युगल यह कुच अब तेरो।
होड करत है अवसि सुखद कनकाचल केरो ॥ ८१ ॥

दोहा।

हैमाङ्गी ! निज अङ्गते प्राण नरनको लेत।
उचित न पर जिय लेन हित निज कटाक्षको देत ॥८२॥

रोला।

मोतिनहूतैं अधिक विशद तुव दसन मनोहर।
ताके संगतैं सदा मोद पावतजु अधिकतर ॥
तिहिं नासाको नीच करति केवल साहसतैं।
यह शुचि मोती अरी ! अवै निज सित प्रकासतैं ॥८३ ॥

दोहा।

प्रिये ! गोराई निज प्रगटि तून करो अति मान।
हेम राशि घर घर लुढ़त लखु तुव गात समान ॥ ८४ ॥

कहैं निरंकुश सुकवि तुव कुच करि कुंभ समान।
सखि ! किमि सादर सुनसि, है तियको उलटो ज्ञान ॥ ८५ ॥

रोला।

मिलन चह्यो प्रिय कबूं तबै मृगनैनी करि रुख।
कियो अनादर जबहिं शयन किय प्रियहु फेरि मुख ॥
भयो दुखित यह नाह काह ? डरिकै अस प्यारी।
वार वार मुख चूमि लिपटि गइ बाहु पसारी ॥ ८६ ॥

उपजाति।

चेलाञ्चलेना ननशीतरश्मिं संरुन्धतीनां छविदृश्वरीणाम्।
व्रजाङ्गनानां स्मरजातकम्पा दकाण्डसम्पात मियाय नीवी ॥९७

औपच्छन्दसिक।

अधरेण समागमा द्रदानां मरुणिम्ना पिहितोपि शुद्धभावः।
हसितेन सितेन पक्ष्मलाक्ष्याः पुन रुल्लास मवाप जातपक्षः ॥९८॥

गीति।

सरसिरुहोदरसुरभावधरितबिम्बाधरे! मृगाक्षि! तव।
वदने शुचिमणिरदने ताम्बूलं केन लक्षयेम वयम् ॥ ९९ ॥

वियोगिनी।

शयिता सविधे ऽप्यनीश्वरा सफलीकर्तुमहो मनोरथान्।
दयिता दयिताननाम्बुजं दरमीलन्नयना निरीक्षते ॥ १०० ॥

उपगीति।

किमिति कृशासि कृशोदरि! किं तव परकीयवृत्तान्तैः।
कथय तथापि सुदे मम कथयिष्यति पथिक! तव जाया ॥१०१

उपगीति

वदनारविन्दसौरभ्या दिन्दिरेषु निपतत्सु।
मय्य धराथिंनि सुदृशो दृशो जय न्त्यतिरुषा परुषाः ॥१०२॥

इतिशृङ्गारोनाम द्वितीयोविलासः ॥

रोला ।

वसनांचलतैं वदन चन्द्रकहं गोपनवारी ।
ब्रजनारी जो कृष्णचन्द्र को देखनवारी ॥
तिन सबके तन प्रगट मदनतैं भयो कंप जब ।
औचकही ! खुलि परी वेगि तिनकी नीवी तब ॥ ९७ ॥

सेत रह्यो जो प्रथम दसनके योग भयेतैं ।
दूजो रंग भो अरुन अधर के राग लयेतैं ॥
वरवरनीयुतनयनि दसनको सोई कञ्चन ।
भयो ऊजरो फेर तिहो विधि सित मृदु हासन ॥ ९८ ॥

दोहा ।

कमल मध्य सौरभ भरित विंवाधर मुखमांहि ।
तुव मोती सम दसनमैं कैसे पान लखांहि ॥ ९९ ॥

रोला ।

सोई पियके पास तऊ पियको सुमनोरथ ।
सफल करनमैं अहो नाहि राखतिहै समरथ ॥
तातैं डरि नवप्रिया कछुक मूँदेही आंखन ।
प्यारेको मुखकमल तबै लागी वह देखन ॥ १०० ॥

चौपाई ।

खीनोदरि ! किमि दूबर गाता । सुनै काह ? तुव परकी वाता ॥
तऊ प्रीतिलगि कहहु हमारी । पथिक ! कहेगी प्रिया तुम्हारी ॥१०१

वदन कमल सौरभतैं मधुकर । जबै चहूंघां झुक्यो अधिकतर ॥
तबै अधरकी लखि मम प्यासा । कोप कठिन भो तिय दृगभासा ॥१०२

इति शृङ्गारनाम द्वितीय विलास ।

अथ तृतीयविलास ।

वसन्ततिलका ।

दैवे पराग्वदनशालिनि हन्त जाते ।
याते च सम्प्रति दिवं प्रति बन्धुरत्ने ॥
कस्मै मनः ! कथयितासि निजा मवस्थां ।
कः शीतलैः शमयिता वचनै स्तवाधिम् ॥ १ ॥

प्रत्युद्गता सविनयं सहसा पुरेव ।
स्मेरैः स्मरस्य सचिवैः सहसा वलोकैः ॥
मामद्य मञ्जुरचनै र्वचनै र्स्व बाले ।
हालेशतो ऽपि न कथं शिशिरीकरोषि ॥ २ ॥

सर्वे ऽपि विस्मृतिपथं विषयाः प्रयाताः ।
विद्यापि खेदगलिता विमुखी बभूव ॥
सा केवलं हरिणशावकलोचना मे ।
नैवा पयाति हृदया दधिदेवतेव ॥ ३ ॥

निर्वाणमङ्गलपदं त्वरया विशन्त्या ।
मुक्ता दयावति ! दयापि किल त्वया सौ ॥
य न्मां न भामिनि ! निभालयसि प्रभाते ।
नीलारविन्दमदभङ्गपटैः कटाक्षैः ॥ ४ ॥

धृत्वा पदस्खलनभीतिवशात् करं मे ।
या रूढवत्यसि शिलाशकलं विवाहे ॥
सा मां विहाय कथ मद्य विलासिनि ! द्याम् ।
आरोहसीति हृदयं शतधा प्रयाति ॥ ५ ॥

तृतीय विलास।

बसन्त तिलक।

हा ! हा ! भयो विमुख दैव जबै हमारो।
स्वर्ग गयो तबहि उत्तम प्राणप्यारो ॥
रेचित्त ! दुःख अपनो किहिसो कहैगो।
को ? शीतबैन कहि तोर बिथा हरैगो ॥ १ ॥

कन्दर्प मित्र मुसुकान भरी निहारी।
बाणी मनोहर कहो जिमि पूर्व प्यारी ॥
हाहा अबूं विनयसो तिमि वेगि आई।
काहे कछू न करती मम शीतलाई ॥ २ ॥

भूल्यो सबै सुखद भोग समूह भारी।
विद्याहु भूलि गइ जे अमती सम्हारी ॥
मोई सदा हरिणबालकनैनि मेरे।
जाती नहीं भगवती मम हीयकेरे ॥ ३ ॥

वेगें सुमुक्ति शुभ ठाम प्रवेश कीनो।
तैंने दयावति दया अब छोड दीनो ॥
जो मोहि भामिनि ! नहीं लखती सबेरे।
नीलारविन्द मद नासन नैन फेरे ॥ ४ ॥

जो तू डरी चरन धारतमें शिलापै।
मेरो धरो कर विवाह समै तहांपै ॥
सो मोहि छोड़ि किमि आज विलासिनी हो !।
स्वर्ग चलो समुझि हीय फटे अती हो ॥ ५ ॥

वसन्त तिलक।

निर्दूषणा गुणवती रसभावपूर्णा।
सालङ्कृतिः श्रवणमङ्गलवर्णराजिः॥
सा मामकीनकवितेव मनोऽभिरामा।
रामा कदापि हृदयान्मम ना पयाति॥ ६॥

चिन्ता शशाम सकलापि सरोरुहाणां।
इन्दो श्च बिम्ब मसमां सुषमा मयासीत्॥
अभ्युन्नतः कलकलः किल कोकिलानां।
प्राणप्रिये! यदवधि त्व मितो गतासि॥ ७॥

सौदामिनीविलसितप्रतिमा नकाण्डे।
दत्वा कियन्त्यपि दिनानि महेन्द्रभोगान्॥
मन्त्रोज्झितस्य नृपते रिव भाग्यलक्ष्मी।
र्भाग्यच्युतस्य करतो मम निर्गतासि॥ ८॥

केनापि मे विलसितेन समुन्नतस्य।
कोपस्य किन्नु? करभोरु! वशम्वदा भूः॥
य न्मां विहाय सहसैव पतिव्रतापि।
यातासि सुक्तरमणीसदनं विदूरम्॥ ९॥

काव्यात्मना मनसि पर्यणमन् पुरा मे।
पीयूषसारसदृशा स्तव ये विलासाः॥
ता नन्तरेण रमणी रमणीयशीला।
चेतोहरा सुकविता भविता कथं नः॥ १०॥

बसन्त तिलक।

निर्दोष श्री गुणभरी रसभाव पूरी।
भूषावती श्रवण हर्षद वर्ण रूरी॥
मो मोहनी सुकविता सम हाय मेरी।
प्यारी कवूं निकरतो नहिं होय बेरी॥ ६॥

चिन्ता गई सब तवैहि सुपङ्कजोंकी।
सोभा बढ़ी अतिहि स्वच्छ सुचन्द्रकी॥
बानीहु कोमल महा पिककी भई है।
प्राण प्रिये! तुम इहांसे जबै गई है॥७॥

हा! बीजुरी सम सुरेन्द्र सुभोग भारी।
ह्वैके कछू दिन प्रिये! कहं तू सिधारी॥
ज्यौं मन्दशक्ति विरही नृपलच्छिमी जू।
त्यों मन्दभाग मम हाथहुतें काढी तू॥ ८॥

मेरो सुकौन अपराध विचारि भारी।
कीनो कहा रुष इतो मम प्राणप्यारी॥
जो तू सुभि तजि सवेग पतिव्रताइ।
नारी सुसुक्ति पद दूर गई प्रियाइ॥ ९॥

है काव्य रूप मनमें करते प्रकासा।
पीयूष सार सम थे तुव जे विलासा॥
ताकै विना सुललना सुविलास रूरी।
ह्वैहै मनोज्ञ कविता मम क्यों सु पूरी॥ १०॥

वसन्त तिलक।

या तावकीनमधुरस्मितकान्ति कान्ते।
भूमण्डले विफलतां कविषु व्यतानीत्॥
सा कातराक्षि! सहसा त्वयि यातवत्यां।
राका धुना वहति वैभव मिन्दिरायाः॥ ११

मन्दस्मितेन सुधया परिषिच्य या मां।
नेत्रोत्पलै र्विकसितै रनिशं समीजे॥
सा नित्यमङ्गलमयी गृहदेवतामे।
कामेश्वरी हृदयतो दयिता न याति॥ १२॥

भूमौ स्थिता रमण! नाथ! मनोहरेति।
सम्बोधनै र्य मधिरोपितव त्यसि व्याम्॥
स्वर्गं गता कथ मिव क्षिपसि त्वमेणशावाक्षि!।
हा! धरणिधूलिषु मा मिदानीम्॥ १३॥

लावण्य मुज्ज्वल मपास्ततुलं च शीलं।
लोकोत्तरं विनय मर्थमयं नयं च॥
एतान् गुणान शरणा नथ मा ञ्च हित्वा।
हाहन्त! सुन्दरि! कथं त्रिदिवं गतासि?॥ १४॥

कान्त्या सुवर्णवरया परया च शुद्ध्या।
नित्यं स्विकाः खलु शिखाः परितः क्षिपन्तीम्॥
चेतोहरा मपिकुशेशयलोचने! त्वां।
जानामि कोपकलुषो दहनो ददाह॥ १५॥

बसन्त तिलक।

तेरे सुमन्द मुसुकान सुकांति रूरे।
भूभागमें विफल थी जु सुकाव्यपूरे॥
हेचञ्चलाक्षि! तुम वेगि जबै गई है।
ता चांदनी मधि रमा छबिसी भई है॥ ११॥

मोको न्हवाइ मृदु हास महा सुधासे।
पूजी खिले नयन कञ्जन जो सदा॥
सो रोज मङ्गल भरी गृहदेवि मेरी।
कामिश्वरी हृदयसे नहिं जातिहै री॥ १२॥

हे नाथ हेरमण यों कहि मंजु वैना।
मोको चढाइ सुरलोक अनन्द दीना॥
सो जाय तू अमरलोक मृगाक्षि! प्यारी।
हा! भूमि धूलिमधि मोहि अवैहि डारी॥ १३॥

शोभा ऽवदात पुनि शील महामहाना।
औरो विचित्र विनयो नय अर्थवाना॥
एते अनाथ गुण कै सुहिको तजौरी।
हा! हाय स्वर्गमधि सुन्दरि! क्यों भजोरी॥ १४॥

हेम प्रभा सम सुकांति ऽरु स्वच्छतासे।
तू अग्नि तेजहु विनास करी सदासे॥
हेकञ्जलोचनि! इहै करि कोप भारी।
जानों हहा अनल ज्वालहि तोहि जारी॥ १५॥

वसन्त तिलक ।

कर्पूरवर्ति रिव लोचनतापहन्त्री ।
फुल्लाम्बुजस्त्रगिव कण्ठसुखैकहेतुः ॥
चेत श्चमत्कृतिपदं कवितेव रम्या ।
नम्या नरैभि रमरीव हि सा विरेजे ॥ १६ ॥

स्वप्नान्तरेपि खलु भामिनि ! पत्युरन्यं ।
या दृष्टवत्यसि न कञ्चन साभिलाषम् ॥
सासम्प्रति प्रचलितासि गुणै र्विहीनं ।
प्राप्तु कथं कथय हन्त परं पुमांसम् ॥ १७ ॥

रीतिं गिरा ममृतवृष्टिकिरां त्वदीयां ।
ता ञ्चाकृतिं कृतिवरै रभिनंदनीयाम् ॥
लोकोत्तरा मथ कृति ञ्च सुधारसार्द्रां ।
स्तोतुं न कस्य समुदेति मनःप्रसादः ॥ १८ ॥

इति करुणोनाम तृतीयविलासः ।

बसन्त तिलक।

वाती कपूर सम लोचन ताप हारी।
अंभोज माल सम कण्ठ अनन्द कारी॥
सो राजती सुकविता सम भावपूरी।
नारी प्रणम्य सुरवाम समान रूरी॥ १६॥

दूजे पती कहुं सुभामिनि! स्वप्नहमैं।
देखी नही तुम सुचारु भरी कहूमैं॥
सो तू अवै परपुरूष गुणी विहीना।
तातें मिलाप हित काहु? पयान कीना॥ १७॥

पीयूष वर्षिणि गिरा कहु रीति तेरी।
औ आकृती सुजन वर्णन जोगहैरी॥
सींची सुधारस अलौकिक रूप सोहै।
काको? नहीमन सुवर्णन हेत मोहै॥ १८॥

इति करुण नाम तृतीयविलास।

अथ चतुर्थ विलास।

पृथ्वी।

विशाल विषयाटवीवलयलग्न दावानल।
प्रसृत्वरशिखावलीविकलितं मदीयंमनः॥
अमन्दमिलदिन्दिरे निखिलमाधुरीमन्दिरे।
मुकुन्दमुखचन्दिरे चिर मिदं चकोरायताम्॥ १॥

अयि! जलधिनन्दिनी नयननीरजालम्बन।
ज्वलज्ज्वलनजित्वरज्वरभरत्वराभङ्गुरम्॥
प्रभात जलजोन्नमद्गरिम गर्व सर्वङ्कषैः।
जगत्त्रितयरोचनैः शिशिरयाशु मां लोचनैः॥ २॥

स्मृतापि तरुणातपं करुणया हरन्ती नृणाम्।
अभंगुरतनुत्विषां वलितया शतै र्विद्युताम्॥
कलिन्दगिरिनन्दिनीतट सुरद्रुमालंबिनी।
मदीयमतिचुम्बिनी भवतु कापि कादंबिनी॥ ३॥

कलिन्द नगनन्दिनीतटवनान्तरं भासयन्।
सदा पथि गतागतश्रमभरं हरन् प्राणिनाम्॥
लतावलिशताहृतो मधुरया रुचा संभृतो।
ममाशु हरतु श्रमा नतितरां तमालद्रुमः॥ ४॥

शिखरिणी।

जगज्जालं ज्योत्स्नामयनवसुधाभि र्जटिलयन्।
जनानां सन्तापं त्रिविध मपि सद्यः प्रशमयन्॥
श्रितो वृन्दारण्यं नतनिखिलवृन्दारकवृतो।
मम स्वान्तध्वान्तं तिरयतु नवीनो जलधरः॥ ५॥

चतुर्थ विलास।

रोला।

अद्भुत विषय घन विपिन मध्य लाग्यो जु दवागिन।
ताको पसरी शिखा लपटसों विकल मोर मन॥
सकल मधुरता भवन प्रेमसों मिली रमा जंह।
तहं चकोर सम होय कृष्णके सुमुख चन्द मंह॥ १॥

अयि! उदधिजा नयन कमल कहं दृढ़ अवलंवन!।
जरत अनल सम अधिक विषय भर झुक्यो मोर तन॥
नव पङ्कजकी बढ़ै गर्वहूकी मोचनतैं।
तिंहिं कर शीतल सकल जगत रोचन लोचन तैं॥ २॥

याद कियेहू ताप दयातैं हरति नरनको।
धारनवारो अचल देह छवि तडित ग्रतनको॥
रवि गिरि तनया तीर देव तरुपै अवलंविनि।
मम मति सुखिनि होय कोऊ सुखदानि कदंविनि॥ ३॥

कालिन्दीके कूल विपिनको दीपनवारो।
आइव जाइव गैल श्रमहुको हारनहारो॥
लता यूथतैं मिलित मधुर सुषमातैं पूरो।
वह तमाल सब हरै खेद वेगिहि श्रम भूरो॥ ४॥

सुन्दर नव पीयूष पूर पूरत त्रिभुवनको।
हरत त्रिविधहू ताप वेगिही जो सब जनको॥
वृन्दावन मधि वसत सकल सुर वन्दित गुरुतर।
मेरो मन तम हरै सदा नूतन वा जलधर॥ ५॥

स्वागता ।

ग्रीष्मचंडकरमंडलभीष्म—ज्वालसंसरणतापितमूर्त्तेः ॥
प्रावृषेण्य इव वारिधरो मे । वेदनां हरतु वृष्णिवरेण्यः ॥ ६ ॥

शिखरिणी ।

अपारे संसारे विषम विषयारण्यसरणौ ।
मम भ्रामं भ्रामं विगलितविरामं जडमतेः ॥
परिश्रान्तस्या यं तरणितनयातीर निलयः ।
समन्ता त्सन्तापं हरिनवतमाल स्तिरयतु ॥ ७ ॥

बसन्त तिलक ।

आलिङ्गितो जलधिकन्यकया सलीलं ।
लग्नः प्रियंगुलतयेव तरु स्तमालः ॥
देहावसानसमये हृदये मदीये ।
देव श्चकास्तु भगवा नरविन्दनाभः ॥ ८ ॥

अनुष्टुप् ।

नयनानन्दसन्दोह तुन्दिलीकरणक्षमा ।
तिरयत्वाशु सन्तापं कापि कादम्बिनी मम ॥ ९ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

वाचा निर्मलया सुधामधुरया यां नाथ शिक्षा मदा ।
स्तां स्वप्नेपि न संस्मरा म्यहमहंभावावृत्तो निस्त्रपः ॥
इत्यागः शतशालिनं पुनरपि स्वीयेषु मा बिभ्रत ।
स्त्वत्तो नास्ति दयानिधि र्यदुपते ! मत्तो न मत्तः परः ॥१०

पातालं व्रज याहि वा सुर पुरी मारोह मेरोः शिरः ।
पारावारपरम्परां तर तथा प्याशा न शान्ता तव ॥
आधिव्याधिपराहतो यदि सदाक्षेमं निजं वाञ्छसि ।
श्रीकृष्णेति रसायनं रसयरे ! शून्यैः किं मन्यैः श्रमैः ॥११

चौपाई

भीषम तीषन रवि मण्डल सम। भीषम भव तापित शरीर मम॥
पावसके जलधर सम सुन्दर। हरै दुःख मम यदुवंशीवर॥ ६॥

रोला।

विषम विषय बहु विपिन भरित इहिं अगम भुवनमैं।
भरमि भरमि मैं मूढ़ रैन दिन सबही छन मैं॥
थक्यौं अबै तौ वही यमुनतट वास करैया।
नव तमाल सम कृष्ण सकल मम ताप हरैया॥ ७॥

जिमि प्रियंगुकी लता लगी नव तरु तमालमैं।
तिमि लपटी है रमा जाहिके तनु विशालमैं॥
देह अन्तके समय हृदय मन्दिरमैं मेरो।
वहै देव श्रीकमल नाभजू करैं उजेरो॥ ८॥

सोरठा

नयन अनंद कलाप अधिक करन समरत्थ जो।
हरै हमारो ताप वेगि कोऊ कादम्बिनी॥ ९॥

सवैया।

कहि मंजुल वैन सुधा सम तू मोहि नाथ जू सीख दई बढ़िकै।
अब स्वप्नहूं मैं नहि याद करौं अभिमान निलज्जतामैं मढ़िकै॥
अपराध अनेक भरे हम पै तुम पालत जीमैं दया गढ़िकै।
तुमतै न दया निधि है यदुनाथ! औ मत्त नही हमतैं चढ़िकै॥१०

जाहु पताल वा स्वर्गमैं जाहु सुमेरुहपै रहो रोज खरो तू।
सिन्धु समूहको जोपै तरो तउ आत्मकी शांति हिये न भरो तू॥
आधि वियाधितैं दुःखित ह्वै यदि छेमकी चाह सदाई धरो तू।
कृष्ण रसायनको पिवरे! अबक्यौं श्रम दूजो अनेक करो तू॥११॥

आर्या।

गणिकाजामिलमुख्या नवता भवता वता ह्मपि सीदन्।
भव मरुगर्त्ते करुणामूर्त्ते! नच सर्वथोपेच्य: ॥ १२ ॥

शिखरिनी।

विदित्वेदं हृश्यं विषमरिपुद्दष्टं नयनयो:।
विधाया न्तर्मुद्रा मथ सपदि विद्राव्य विषयान्॥
विधूया न्तर्ध्वान्तो मधुर मधुरायां चिति कदा।
निमग्न: स्यां कस्याञ्चन नवनभस्या म्बुदरुचौ ॥ १३ ॥

शार्दूलविक्रीडित।

मृद्वीका रसिता सिता समश्रिता स्फीतं निपीतं पय:।
स्वर्यातेन सुधा प्यधायि कतिधा रम्भाधर: खण्डित:॥
सत्यं ब्रूहि मदीयजीव! भवता भूयो भवे भ्रास्यता।
कृष्णेत्यक्षरयो रयं मधुरिमोद्गार: क्वचि ल्लक्षित: ॥ १४ ॥

वज्रं पापमहीभृतां भवगदो द्रेकस्य सिद्धौषधं।
मिथ्याज्ञाननिशाविशालतमस स्तिग्मांशुबिम्बोदय:॥
क्रूरक्लेशमहीरुहामुरुतरज्वालाजटाल: शिखी।
द्वारं निर्वृतिसद्मनो विजयते कृष्णेति वर्णद्वयम् ॥ १५ ॥

रेचेत:! कथयामि ते हित मिदं वृन्दावने चारयन्।
वृन्दं कोऽपि गवांनवाम्बुदनिभो बन्धु र्न कार्य स्त्वया॥
सौन्दर्यामृत मुद्गिरद्भि रभित: संमोह्य मन्दस्मितै।
रेष त्वां तव वल्लभां श्च विषया नाशु क्षयं नेष्यति ॥ १६ ॥

दोहा

गणिका अजामिल आदिको ताको कृपा निधान।
भव मरु थल बिलखात हम तजु न कवूं भगवान ॥ १२ ॥

रोला

कठिन शत्रु मम दुष्ट जगतको वेगिहि जानौ।
विषय छोड़ि दृग मूंदि समाधि हु हियमें ठानौ॥
नासि चित्त अंधियार मनोहर चेतनमय सब।
भादो नव घन कांति मध्य ह्वै हौं विलीन कब॥ १३

कवित्त।

चाख्यो मिश्रिरी को अरु पान कियो स्वच्छ दूध त्योंही परि
पूरन सुदाख हूको खायोतू। जाय सुरलोक मध्य अमृत
पियो है पुनि कैयोवार रंभा को अधर खण्डि आयो तू॥
अवहू तो सांची वात कहुरे हमारो जीव "विप्रचंद" जगवीच
वार वार धायो तू। कृष्ण या युगल वर्ण माधुरी प्रवाह सम
अदभुत माधुरी कबूहूं कहूँ पायो तू॥ १४॥

सवैया

पाप पहारको वज्र समान अहै भवरोग महौषध आकर।
झूठ महा भ्रम रैनहु के अंधियार विशालहु को है प्रभाकर॥
फैल्यो वड़ो दुख वृच्छहुको अहैपावक ज्वाल समान उजागर।
मुक्तिके द्वार कपाट समान विराजत कृष्ण यहै युग आखर॥१५॥

रेमन! तोतैं कहूं हितबैन जु बृन्दावनै सब गौअन चारे।
तासे करो न मिताई कवूँ जिहि रूप अहै नव मेघसे कारे॥
सुन्दरता दिखराइ वसीकरि कौमल त्यौं मुसुकान पसारे।
नासिहै तोहिअबै अवसिहि अरु बल्लभजे विषयादि तिहारे॥१६॥

मन्दाक्रान्ता ।

अव्याख्येयां वितरति परां प्रीतिं मन्तर्निमग्ना ।
कण्ठे लग्ना हरति नितरां या न्तरध्वान्तजालम् ॥
तां द्राक्षौघै रपि वहुमतां माधुरी मुद्गिरन्तीं ।
कृष्णेत्याख्यां कथय रसने ! यद्यसि त्वं रसज्ञा ॥ १७ ॥

सन्त्ये वास्मिन् जगति वहवः पक्षिणो रम्यरूपा ।
स्तेषां मध्ये मम तु महती वासना चातकेषु ॥
यै रध्यक्षै रथ निज सखे नीरदं स्मारयद्भि ।
श्चित्तारूढं भवति किमपि ब्रह्म कृष्णा भिधानम् ॥ १८ ॥

विष्वद्रीच्या भुवन मभितो भासते यस्य भामा ।
सर्वेषा मप्यह मिति विदांगूढ मालम्बनं यः ॥
तं पृच्छन्ति स्वहृदय मतो वेदिनो विष्णु मन्या ।
नन्याख्यो ऽयं शिव शिव नृणां केन वा वर्णनीयः ॥ १९ ॥

शार्दूलविक्रीडित

सेवायां यदि साभिलाष मसिरे ! लक्ष्मीपतिः सेव्यतां ।
चिन्तायामसि सस्पृहं यदि तदां चक्रायुध श्चिन्त्यताम् ॥
आलापं यदि वाञ्छसि स्मररिपो र्गाथा तदां लप्यतां ।
स्वापं वाञ्छसि चे न्निरर्गलसुखे चेत स्तदा सुप्यताम् ॥२०॥

शिखरिणी

नव ग्रीष्मप्रौढा तप निवहै सन्तप्त वपुषो ।
वला दुन्मूल्य द्राङ् निगडम विवेकव्यतिकरम् ॥
विशुद्धे स्मि न्नात्मा मृत सरसि नीराश्य शिशिरे ।
विहङ्गास्ते दूरीकृत कलुषजालाः सुकृतिनः ॥ २१ ॥

वर्णन जोग न जोतिंहिं प्रीतिको देत जो तामै रह्यो मगना तू।
जो अन्धियार हरै हियको तिहिको निज कांठ सदारखना तू॥
दाखहुतैं मधुराई महा वरसावत पान तिन्हे करना तू।
कृष्णको नाम सदा जप जौं रस जाननवारौ अहै रसना तू॥१७॥

रोला।

अहैं अनेकन जगत मांह पच्छी अति सुंदर।
तउ चातकमै रहत हमारो प्रेम अधिकतर॥
जो अपने प्रिय मित्र मेघको याद करावत।
तातैं कोऊ कृष्ण ब्रह्म चित्तमैं चढ़ि आवत॥ १८॥

सर्वव्यापी जाहि कांतितै भुवन दिपत है।
"मैं" असज्ञानी सबै जनहुं को अवलंबत है॥
हिय सम हरिको जानि अन्यसो जो पूछत है।
तो अनुचित यह अहो वरनि तिहि कौन सकत है॥ १९॥

सबैया।

सेवन मैं अभिलाष अहै यदि श्रीपति को तब सेवन कीजै।
चिंतनमै यदि है तुव लालसा तो हरि को नित चिंतन कीजै॥
चाहत गान कियो तवतो मदनारि के गीतको गायन कीजै।
सोइवेको रुचि है तवतो सुख पूरन ब्रह्ममै सोइवो कीजै॥२०॥

रोला।

नूतन ग्रीषम ताप पुंज तापित जिहिको तन।
सो अतिवलतैं काटि तुरत अविवेक सुवंधन॥
अमल निराशाशीत आतमा अमृत सुसरमै।
पाप जाल करिदूर मुमुच्छू खगहै भरमै॥ २१॥

मंदाक्रान्ता।

वन्धोन्मुक्त्यै खलुमखमुखान् कुर्वते कर्मपाशान्।
अन्तः शान्त्यै मुनि शतमता नल्प चिन्तां भजन्ति॥
तीर्थे मज्जन्त्य शुभजलधेः पार मारोढुकामाः।
सर्वंप्रामादिक मिह भवे भ्रान्तिभाजां नराणाम्॥ २२॥

गीति।

प्रथमं चुम्बितचरणा जङ्घाजानुरुनाभि हृदयानि।
आलिङ्ग्य भावना मे खेलतु विष्णो मुखाजशोभायाम्॥२३॥

वियोगिनी।

मलयानिलकालकूटयोः रमणी कुंतल भोगि भोगयोः।
श्वपचात्मभुवो र्निरन्तरा ममभूयात् परमात्म निश्चितिः॥ २४॥

निखिलं जगदेव नश्वरं पुन रस्मिन् नितरां कलेवरम्।
अथ तस्य कृते कियानयं क्रियते हन्त जनैः परिश्रमः॥ २५॥

आर्या

प्रतिपल मखिलान् लोकान् मृत्यु मुखं विशतो ऽपि निरीक्ष्येह।
हा हन्त किन्तु चित्तं विरमति नाद्यापि विषयेभ्यः॥ २६॥

पुष्पिताग्रा

सपदि विलय मेतु राजलक्ष्मी रुपरि पतं त्वथवा कृपाणधाराः।
अपहरतुतरां शिरः कृतान्तो मम तुमति र्न मना गपैतु धर्मात्॥२७॥

उद्गीति

अपिवहुल वलमूर्द्धनि रिपुरेव निरन्तरं भ्रमतु।
पातयतु वा सिधारा रूह मणुमात्रं न किञ्चि दपभाषे॥ २८॥

बंध छुटन हित कर्म फांस मख आदि करत हैं।
मन निर्मल हित सुमुनि कथित बहु ध्यान धरत हैं॥
पाप जलधितैं पार होन हित तीरथ जाते।
अफल कर्म सब करत भ्रमित नर जनम गवांते॥ २२॥

सोरठा

मम मन तिहिं पद चूमि, जंघ जानु उरु नाभि हिय।
ह्वै तब खेलै घूमि, हरिमुख कमल सुकांति मैं॥ २३॥

दोहा।

विष अरु मलय समीर मैं, तियकच अरु अहिकाय।
श्वपच और विधिमैं हमैं, ब्रह्म बुद्धि ह्वै जाय॥ २४॥

नसि जैहै सब जग अवसि, नसिजैहैं यह देह।
ता हित जन कितनौं करत, हाय परिश्रम एह॥ २५॥

छिन छिन सब जग मृत्यु के, मुखमैं पैठत जात।
तिहिं लखि अजहूँ क्यौं, न मन विषयनतैं हटि जात॥ २६॥

दोहा।

भवै राज लक्ष्मी नसै, गिरै सीस तलवार।
काटै मम शिर यम तऊ, टरै न धर्म हमार॥ २७॥

बहु सेनालै यदपि रिपु, घूमत फिरै सदाहि।
खरग चलावै तदपि कटु, वचनहुँ कहिहौं नाहि॥ २८॥

आर्य्या

तरणोपाय मदृष्ट्वा खलु मामक जीव ताम्यसि कुतस्त्वम् ।
चेत: सरणौ किन्ते नायाति कदापि नन्द सुत: ॥ २८ ॥

शीखरिणी

श्रियो मे मा सन्तु क्षणमपि च माद्यद्गजघटा ।
मदभ्राम्यद्भृङ्गा वलि मधुर हुङ्कार सुभगा: ॥
निमग्नानां यासु द्रविण रयपर्या कुलधियां ।
मन: सेवा कार्ये हरि चरणयो नैव रमते ॥ ३० ॥

गीति

किं नि:शङ्कं शेषे शेषेवयस: समागतो मृत्यु: ।
अथवा सुखं शयीथा निकटे जागर्ति जान्हवी जननी ॥३१॥

आर्या

सन्तापं किं कलयसि धावं धावं धरातले हृदय ! ।
अस्ति मम शिरसि सततं नन्द कुमार: प्रभु: परम: ॥ ३२ ॥

बसन्त तिलक ।

रेरेमनो ! मम मनोभवशातनस्य ।
पादाम्बुज द्वय मनारत मानमत्वम् ॥
किं मां निपात यसि संसृतिगर्त्त मध्ये ।
नैता वता तव गमिष्यति पुत्रशोक: ॥ ३३ ॥

पुष्पिताग्रा

मरकतमणिमेदिनीप्ररोह स्तरुणतर स्तरुरेष वा तमाल: ।
रघुपति मवलोक्य तत्र दूरा दृषिनिकरै रिति संशय स्तदापि ।३४।

हरिणी

तरणितनया किं स्या देषा न तोयमयी हिसा ।
मरकतमणिज्योत्स्ना वा स्यात् नसा मधुराकृति: ॥
इति रघुपते: कायच्छाया विलोकनकौतुकै: ।
वनवसतिभि: कै: कै रादौन सन्दिदिहे जनै: ॥ ३५ ॥

दोहा

न लखि उधार उपाय कछु मम मन क्यों अकुलात।
कहा कबहुँ तोहि नन्द सुत चितपै नहि चढि जात॥ २९॥

रोला।

मत्त दंति मद भ्रमत मधुप गन मृदु रव राजित।
मोहि छनहु जति रहै लच्छिमी ऐसी शोभित॥
डूबे तिहिमैं द्रव्य वेगतैं विकल जासु मन।
हरि चरननमै चित लगै नहि तासु एक छन॥ ३०॥

दोहा

किमि निरभय सोवसि वयस बीत्यो आयो काल।
अथवा करु सुख शयन, ढिग अहै गंग जल जाल॥ ३१॥

धाय धाय महि किमि करसि रेमन दुख बहु बार।
हमरे शिर पै है सदा प्रभु श्री नंद कुमार॥ ३२॥

रोला

रेहमरे मन! सदा मनोभव नासन जू के।
चरण कमल युगकेर वंदना करु अबहूके॥
यह संसार अपार गर्तमधि क्यों मोहि डारै।
इतनो ही तैं पुत्र शोक जैहै न तिहारे॥ ३३॥

दोहा

मरकत भूअंकुर किधौं सुतरु तमाल नवीन।
दूरहितैं लखि रामको मुनि गन संसय कीन॥ ३४॥

रोला

यमुना है यह किधौं? नही वह जल पूरित है।
मरकत मणि दुति अहै? नही वह कठिन महत है॥
इमि रघुपतिकी काय कांति को देखन हारे।
बहु विधि किय संदेह विपिनके रहने वारे॥ ३५॥

औपच्छन्दसिक !

चपला जलदा च्च्युता लता वा तरुमुख्या दिति संशये निमग्नः ।
गुरुनिःश्वसितै कपिर्मनीषी निरणैषी दथ ता वियोगिनीति ।३६।

शार्दूलविक्रीडित

भूति र्नीचगृहेषु विप्रसदने दारिद्र्यकोलाहलो ।
नाशो हन्त सता मसत्फलजुषा मायुःसमानां शतम् ॥
दुर्निर्तिं तव वीक्ष्य कोपदहन ज्वालाजटालो ऽपिसन् ।
किं कुर्वे जगदीश ! यत् पुन रहं दीनो भवानीश्वरः ।३७।

स्रग्धरा

आमूलाद्रत्नसानो र्मलयवलयिता दाच कूला त्पयाधेः ।
यावन्तः सन्ति काव्य प्रणयन पटव स्ते विशङ्कं वदन्तु ॥
मृद्वीका मध्यनिर्यन्म सृणमदधुरी माधुरी भाग्य भाजां ।
वाचा माचार्यतायाः पद मनुभवितुं कोऽस्ति धन्यो मदन्यः ।३८।

शिखरिणी

गिरां देवी वीणागुण रणन हीना दरकरा ।
यदीयानां वाचा ममृतमय माचामति रसम् ॥
वच स्तस्या कर्ण श्रवण सुभगं पण्डित पतेः ।
रधुन्वन् मूर्द्धानं नृपशु रथवा यं पशुपतिः ॥ ३९ ॥

वसन्त तिलक ।

मद्वाणि ! मा कुरु विषाद मनादरेण ।
मात्सर्य मग्नमनसां सहसा खलानाम् ।
काव्यारविन्द मकरन्द मधुव्रतास्त्व ।
मास्येषु धास्यसितमां कियतो विशालान् ॥ ४० ॥

जलद अंकतें गिरी चंचला कैधौं या है।
कैधौं तरु वर मृदुल डारतें खसी लता है॥
इमि संशय करि सुकपि लखे जब स्वास महा है।
जानगये तब सियहिं, वियोगिनि या वनिता है॥ ३६॥

संपति दुर्जन गेह विप्र घर दारिद भूरी।
हा! सज्जनको मृत्यु दुष्टको आयुष पूरी॥
यह अनीति तुव देखि कोप दावागि जरत हौं।
कहाकरी तुम ईश, नाथ मैं दुख भरतहूं॥ ३७॥

लेसुमेरु तें मलय अचल तें उदधि तीरलौं।
काव्य रचनमैं निपुन अहैं तेकहैं निडरलौं॥
दाख बीचतें काढी मधुरता भरे वैनको।
गुरु पद बैठनहार मोहितें दूजो जनको॥ ३८॥

वीणा वादन माहि अनादर करी भारती।
जिहि वानीको अमृत भरित रसधार चाखती॥
तिहि पंडित पति केर मधुर वानी को सुनको।
नर पशु वा पशु पालहिलेहै ना निज सिरको॥ ३९॥

ए मम बानी! करु विषाद ना नेको मनमैं।
परद्वेषी कटु हृदय अनादर किय यदि खलनै॥
काव्य कमल मकरंद मधुप जोरसिक सुजन है।
तिहि नरको निज वदन माहि रखिहौ तुम वसकै॥४०॥

शार्दूल विक्रीडित

विद्वांसो वसुधातले परवचः श्लाघासु वाचंयमाः
भूपालाः कमला विलास मदिरोन्मीलन्मदाघूर्णिताः ॥
आस्येधास्यति कस्य लास्य मधुना धन्यस्य कामालस
स्वर्वामाभ्रयामाधुरीं विधुरयन् वाचां विलासो मम ॥४१॥

शिखरिणी

मधुद्राक्षा साक्षादमृतमथवामाधरसुधा
कदाचित् केषांचित्खलुहि विदधीरन्नपिमुदम् ॥
ध्रुवं ते जीवन्तो प्यहह मृतका मन्दमतयो
न येषामानन्दं जनयति जगन्नाथभणितिः ॥ ४२ ॥

शार्दूल विक्रीडित

निर्माणे यदि मार्मिको ऽसि नितरामत्यन्त पाकद्रवन्
मृद्वीका मधुमाधुरी मद परीहारोद्धुराणां गिराम् ।।
काव्यं तर्हि सखे सुखेन कथय त्वं सम्मुखे मादृशां
मा चेद्दूषक्षत मा कमनाक्षत मिव स्वान्ता द्बहिर्मार्ज्जथाः ४३

आर्या

माधुर्यै रपि धुर्यैं द्राक्षाक्षीरेक्षु माक्षिकादीनाम्
वन्द्यैव माधुरीयं पण्डित राजस्यकवितायाः ॥ ४४ ॥

शार्दूल विक्रीडित

शास्त्राण्याकलितानि नित्यविधयः सर्वेपि सम्भाविताः
दिल्लीवल्लभ पाणिपल्लवतले नीतंनवीनं वयः ॥
सम्प्रत्युज्भितमासनं मधुपुरीमध्ये हरिः सेव्यते
सर्वं पण्डित राजराज तिलकेनाकारि लोकाधिकम् ॥४५॥

अनुष्टुप

दुर्वृत्ता जारजन्मानो हरिष्यन्तीति शङ्कया।
मदीय पद्यरत्नानां मञ्जूषैषा मयाकृता ॥ ४६ ॥

कवित्त

ऐसे भूमिमण्डलमे पण्डित अनेक हैं जे दूजेको प्रसंसा करिवेमें दुखपावें महा। भूपहैं कितेक जाको लच्छीमो विलासवहु मद्यके नशेतें सदा दोऊ नैन घूमिरहा॥ हाय! अब कौन धन्य जन हैं जगतवीच जाके सुख मन्दिरमें करिहैं उजास जहा। काम अलसानी देवतानोको सुमाधुरीको नीच करि वानी मम करिहै विलास कहा॥ ४१॥

रोला

मधु पियूष अरु दाख और तिय अधर सुधाहू।
कहूं काहु के होय वढावे मोद महा हू॥
हाय! मन्द मति मृतक सरिस हैं जीवितहूते।
जगन्नाथको काव्य सुनत नाहीं प्रसन्न जे॥ ४२॥

पके दाख फल सुरस मधुरता मद मोचन जो।
अस वानीको रचन माहि यदि तुम सुचतुरहो॥
तो मम सन जन निकट काव्य पढ़ु अति अनंद तै।
नातो निज कृत पाप सरिस ना काढहु मन तें॥ ४॥

दोहा

पण्डित राज कवित्तको, मधुरी जव प्रगटात।
दाख दूध मधु ऊखको, मधुर बांझहु जात॥

सवैया

शास्त्र महा पठिडाख्यो सवै अरु नित्य विधी सवही करिदीनो।
दिल्ली पती कर पल्लव छांहमें कीन वितीत सुवैस नवीनो॥
छोड़ो अवै निज आसन को मथुरा में हरी मधीचित्त है लीनो।
पण्डितराज सिरोमनिजू सभहो जगतें अधिकायके कीनो॥४५॥

दोहा

जारज दुष्ट चुराइहैं, यह शंका करि होय।
निजकृत पद्यमणीनको यह पेटी रचि दीय॥ ४६॥

इतिश्री भामिनी विलास प्रति विम्बे शान्तो नाम चतुर्थो विलासः।

समाप्तम्